Kashmiri Pandit Sabha
JAMMU (Tawi)

साहित्य-सुधा



सम्पादक
पं० रामचन्द्र कुशल,
शास्त्री, एम.ए., एम.ओ.एल.



मोतीमाला का २४वां रत्न

साहित्य-सुधा

(प्राचीन हिन्दी के दस प्रतिनिधि कवियों
की चुनी हुई कविताओं का संग्रह)



संपादक—

श्री पं० रामचन्द्र, कुशल, शास्त्री,
एम. ए., एम. ओ. एल.,
ओरियएटल कालेज, लाहौर ।

प्रकाशक
मोतीलाल बनारसीदास
हिन्दी-संस्कृत पुस्तक-विक्रेता
सैदमिट्ठा बाजार, लाहौर ।



तृतीय संस्करण] १९४३ [मूल्य १)

प्रकाशक
सुन्दरलाल जैन,
मैनेजिंग प्रोप्राइटर,
मोतीलाल बनारसीदास,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर ।

(सर्वाधिकार सुरक्षित हैं)

मुद्रक
शान्तिलाल जैन,
बम्बई संस्कृत प्रेस,
शाही मुहल्ला, लाहौर।

संसार भर की हिन्दी संस्कृत पुस्तकें नीचे लिखे पते से मंगवाएं ।

मोतीलाल बनारसीदास	मोतीलाल बनारसीदास
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता	हिन्दी-संस्कृत-पुस्तक-विक्रेता
बाँकीपुर, पटना ।	सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर ।

विषय-सूची

विषय	पृष्ठ
भूमिका	ग
१ कवि और कविता	घ
२ कवि कौन है ?	झ
३ प्राचीन हिन्दी कविता के मूलतत्त्व और उसकी विशेषताएं	ट
४ प्रस्तुत संग्रह	त
१. महात्मा कबीरदास	
१ परिचय, सिद्धान्त, कविता, प्रकृत	१–३
साखियां	
१ सद्गुरु	४
२ विनय	४
३ प्रेम	४
४ स्मरण	५
५ विश्वास	५
६ कथनी और करनी	५
७ संतजन	५
८ चेतावनी	६
९ उपदेश	६
शब्द	७
२. गुरुनानक	
परिचय, सिद्धान्त, कविता, प्रकृति	११–१३
१ दोहे	१३
२ भजन	१४
३. मलिक मुहम्मद जायसी	
परिचय, सिद्धान्त, कविता, प्रकृत	१६–१७
१ स्तुति	१७
२ सर-वर्णन	१८
३ उच्च अभिलाषा	१९
४ गर्व	१९
४. गोस्वामी तुलसीदास	
परिचय, सिद्धान्त, कविता, प्रकृत	२०–२३
१ वन्दना	२३
२ राम-लक्ष्मण-संवाद	२४
३ सुमित्रा-लक्ष्मण-संवाद	२६
४ राम-केवट-संवाद	२७
५ अंगद-रावण-संवाद	२८
५. भक्त सूरदास	
परिचय, सिद्धान्त, कविता, प्रकृत	३५–३७
१ वन्दना	३७
२ विनय	३८
३ नोकझोंक	४०
४ आत्मप्रबोधन और उपदेश	४२
५ वात्सल्य (बाल-लीला)	४३
६ यशोदा का कृष्ण-विरह	४५

विषय	पृष्ठ
७ यशोदा का देवकी को संदेश	४६
८ यशोदा का कृष्ण को संदेश	४७
९ गोपी-उद्धव-संवाद	४७
१० गोपियों का कृष्ण को संदेश	४८
११ कृष्ण-विरह में व्रज की दशा	४९
१२ विविध	५०

६. मीराबाई

परिचय, सिद्धान्त, कविता, प्रकृत	५१–५३
१ पद	५४

७. केशवदास

परिचय, सिद्धान्त, कविता, प्रकृत	५७–५८
१ सीता-स्वयंवर में रावण-बाणासुर-संवाद	५८
२ राम-लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र का सीता-स्वयंवर में जाना, राम का धनुष तोड़ना और सीता का उन्हें जयमाला पहनाना।	६४

८. बिहारीलाल

परिचय, सिद्धान्त, कविता, प्रकृत	६७–६८
१ प्रार्थना	६८

विषय	पृष्ठ
२ श्रीकृष्ण	६९
३ ग्रीष्म	६९
४ अन्योक्तियाँ	६९
५ लोक-रीति और सामान्य नीति	७०
६ वेदान्त	७२
७ उपदेश	७२
८ भक्त के व्यङ्गय	७२

९. भूषण

परिचय, सिद्धान्त, कविता, प्रकृत	७३–७५
१ भवानी-स्तुति	७५
२ शाहजी की उदारता	७५
३ शिवाजी का प्रताप और पराक्रम	७६
४ शिवाजी की शत्रुओं पर चढ़ाई	,,
५ ,, उदारता और दान	७८
६ शिवाजी का यश	७९
७ दानपरक-प्रेरणा	,,

१०. पद्माकर भट्ट

परिचय, सिद्धान्त, कविता, प्रकृत	८०–८२
१ प्रबोध-पचासा से	८२
२ गङ्गालहरी से	८४
शब्दार्थ	८७–९३

भूमिका

जीव आनन्द-स्वरूप परम सत्ता से पैदा हुआ है, उसी का अंश है—"आनन्दाद्धयेव खल्विमानि भूतानि जायन्ते"। इसी कारण (सजातीयाकर्षण-सिद्धान्त के अनुसार) उसका आनन्द की ओर आकर्षण स्वाभाविक है। उसकी सारी दौड़धूप का, समस्त प्रवृत्तियों का लक्ष्य आनन्द ही है। वह आनन्द से नहीं तो कम से कम आनन्द की आशा से तो कभी शून्य नहीं हुआ, और जब कभी हुआ है, तब वह क्षणभर के लिये भी जीवित नहीं रह सका। वह बड़ी से बड़ी विपत्तियों और कष्टों में भी सुख की—आनन्द की—आशा से ही जीवन धारण करता है—"आनन्देन जातानि जीवन्ति"। मनुष्य बाह्य पदार्थों में आनन्द ढूँढ़ता है, परन्तु आनन्द उसके अन्दर ही है, उसका स्वरूप ही है। वह अविद्या (अज्ञान) या माया के आवरण से ढका हुआ है, जब किसी कारण से वह आवरण उठता है, तभी आनन्द प्रकाशित होता है और सब दुख दूर हो जाते हैं।

आनन्द की अभिव्यक्ति के साधनों में कविता का स्थान ज्ञान, योग और भक्ति को छोड़ शेष सबसे ऊँचा है। उत्कृष्ट कविता के परिशीलन से भावुक, सहृदय, मनुष्य के हृदय से रज-तम (सांसारिक प्रवृत्ति, राग, द्वेष, मोह आदि) का आवरण उठ जाता है, जिससे उसका अपना स्वरूप—आनन्द—अभिव्यक्त हो जाता है और वह तन्मय होकर और सब भूल जाता है। यह घड़ियाँ उसके जीवन की अमूल्य घड़ियाँ होती हैं। इस अवस्था में वह संसार के झंझटों से, राग-द्वेष से, मुक्त होकर समाधि में योगी के समान आत्मस्वरूप में—लोकोत्तर आनन्द में—विश्राम पाता है। यही कारण है कि सृष्टि के आरम्भ से ही ऊँची सभ्यता और संस्कृति में रहने वाले नागरिकों से लेकर अशिक्षित, असभ्य ग्रामीणों तथा जंगलियों तक में कविता की प्रवृत्ति पाई जाती है। ग्रामीण लोग जब अपनी सरल, स्वाभाविक रचनाओं को, सीधे सादे गीतों को, गाते हुए अपने कष्टमय जीवन की तीव्रता को भूलकर तन्मयता से नाच उठते हैं तब उनके आनन्दस्वरूप की अभिव्यक्ति से कौन इन्कार कर सकता है।

साधारणतः कवि की कृति को—रचना को—काव्य या कविता कहते हैं—"कवेः कर्म काव्यम्"। अंग्रेजी के कवितावाचक 'पोएट्री (Poetry)' शब्द का अर्थ भी 'रचना' ही है। यद्यपि आजकल अंग्रेजी के 'लिट्रेचर

(Literature)' शब्द का पर्याय मानकर साहित्य-शब्द का 'वाङ्मय' (समस्त ग्रन्थ-राशि) के अर्थ में प्रयोग किया जाता है तथापि पहले 'साहित्य' शब्द का व्यवहार मुख्यरूप से काव्य, नाटक आदि कवि-कृतियों के अर्थ में ही होता रहा है। राजशेखर ने कविता का निरूपण करनेवाली विद्या को 'साहित्य-विद्या' कहा है; विश्वनाथ के प्रसिद्ध काव्य-निरूपक ग्रंथ का नाम 'साहित्य-दर्पण' है; "साहित्य-संगीत-कला-विहीनः साक्षात्पशुः पुच्छविषाण-हीनः" † इसमें भी साहित्य-शब्द का अर्थ कवि-कृति ही है। इस लिये प्राचीन हिन्दी के चोटी के दस कवियों की चुनी हुई कविताओं के प्रस्तुत संग्रह का नाम हमने 'साहित्य-सुधा' रक्खा है।

कवि और कविता—

कवि और कविता अन्योन्याश्रित हैं। एक के बिना दूसरे की स्थिति नहीं हो सकती। प्राचीन, अर्वाचीन तथा प्राच्य, पाश्चात्य साहित्य-कोविदों और आलोचकों ने अपने अपने दृष्टिकोण, वातावरण और समझ के अनुसार कविता के अनेक लक्षण किये हैं। परन्तु ऐसा लक्षण एक भी नहीं जिसे सर्वथा निर्दोष और पूर्ण माना जा सके। वास्तव में कविता एक ऐसी व्यापक वस्तु है कि उसे लक्षण की तंग परिधि में बंद करना संभव ही नहीं। इसलिये जो लक्षण या विवेचन उपलब्ध होते हैं उन्हीं के अनुसार हम कविता के स्वरूप के विषय में थोड़ी बहुत जानकारी प्राप्त कर सकते हैं।

हमारे प्राचीन आचार्यों ने जो कविता के लक्षण किये हैं* उनमें मुख्य चार बातें हैं—शब्द, अर्थ, अलङ्कार और रस या लोकोत्तर आनन्द। शब्द और अर्थ का नित्य सम्बन्ध है, ये दोनों परस्पर समन्वित हैं—"गिरा अर्थ जल-वीचि इव कहियत भिन्न न भिन्न।" जो शब्द अर्थहीन हैं वह शब्द नहीं, अव्यक्त ध्वनिमात्र हैं। अलङ्कारों में से अनुप्रास आदि (शब्दालङ्कार)

---

† कविता, संगीत और कला के ज्ञान से शून्य मनुष्य पूँछ-सींग-रहित साक्षात् पशु है।

* "शब्दार्थौ सहितौ काव्यम्"—भामह
"इष्टार्थव्यवच्छिन्ना पदावली (काव्यम्)"—दण्डी
"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि"—मम्मट
"वाक्यं रसात्मकं काव्यम्"—विश्वनाथ
"रमणीयार्थप्रतिपादकः शब्दः काव्यम्"—जगन्नाथ

शब्दों में सौन्दर्य या चमत्कार पैदा करते हैं और उपमा, रूपक आदि (अर्थालङ्कार) अर्थों में। उक्ति का वैचित्र्य या बाँकापन ही अलङ्कारों का मूल है‡। इसलिये साधारण शब्दों में साधारण अर्थ या विचार को प्रकट करने वाले वाक्य काव्य नहीं होते किन्तु अलङ्कार-सहित शब्दार्थ द्वारा चमत्कारक ढंग से भाव को प्रकट करने वाले वाक्य ही काव्य कहलाते हैं, अन्यथा इतिहास, धर्मशास्त्र, दर्शन, आदि और हमारी साधारण बात-चीत, सभी काव्य कहलाएंगे। यदि साधारण शब्दों में यों कहें-"मुख से राम का नाम निकलने पर पाप नष्ट हो जाते हैं" तो इसे चमत्कार हीन होने से काव्य नहीं कह सकते। परन्तु इसी को यदि पद्माकर के शब्दों में यों कहें-"त्यों मुख राम के नाम के लागत यों उठि जात है पातक पाजी। ज्यों छिन एक ही में छुटि जाति है आतस के लगे आतसबाजी॥' तो यह काव्य है, क्योंकि इसमें अनुप्रास और उपमा (अलङ्कारों) का चमत्कार है।

अलङ्कारवादियों के मत में अलङ्कार ही कविता के आवश्यक और प्रधान घटक हैं। वे रसों और दूसरे व्यङ्ग्यों को भी अलङ्कारों के ही अन्तर्गत मानते हैं। वे रस-युक्त वाक्य में 'रसवत्' अलङ्कार मानते हैं और भावयुक्त वाक्य में प्रेय "रसवद्दर्शितस्पष्टश्रृङ्गारादिरसाश्रयम्" इत्यादि (भामह)।

दूसरे हैं रसवादी, जो रस को ही काव्य में प्रधानता देते हैं। विश्वनाथ के मत में 'रस-युक्त वाक्य ही काव्य' है। वीर, करुण आदि रसों से युक्त रचनाओं के पढ़ने से भावुक सहृदय के हृदय में ऐसी तन्मयता आजाती है कि वह संसार से ऊपर उठकर, सांसारिक संबन्धों की परिमित परिधि से मुक्त होकर, अपने आत्मा की विश्व के आत्मा के साथ एकता अनुभव करने लगता है, अपने पृथक् व्यक्तित्व को भूल जाता है। इसीलिये वह भूषण की कविता पढ़ता हुआ उत्साह से फड़क उठता है और शिवाजी के साथ एकरूप होकर अपने हृदय में वीरता की लहर उमड़ती हुई अनुभव करता है, 'सीता-वनवास' पढ़ता हुआ करुणा से द्रवीभूत हो जाता है और सीता के साथ एकरूप होकर बेबस आँसू बहाता है, मानो सीता का सारा दुःख उसके प्राणों में समा गया है। परन्तु वह दुःख उसके लिये दुःख नहीं, परम

---

‡ भामह कहते हैं-'सैषा सर्वत्र वक्रोक्तिरनयाऽर्थो विभाव्यते। यत्नोऽस्यां कविना कार्यः कोऽलङ्कारोऽनया विना।'- वक्र (बाँकी या विचित्र) उक्ति अर्थ को चमत्कृत कर देती है। इसके बिना कोई अलङ्कार नहीं हो सकता। कवि को इसमें यत्न करना चाहिये।

आनन्द है, इसीलिये उसे छोड़ना नहीं चाहता, 'सीता-वनवास' को बार बार पढ़ता है और आँसू बहाता है। यही अलौकिकता है। काव्य-परिशीलन या नाटक-दर्शन से रति, शोक, क्रोध आदि भावों के उद्बुद्ध, उद्दीप्त और परिपुष्ट होने से पैदा होने वाली इसी दुःखलेश-शून्य, लोकोत्तरानन्दमय तन्मयता की अवस्था को 'रस' कहते हैं।

रस ही के द्वारा कवि सहृदय का सृष्टि के साथ रागात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में समर्थ होता है। रस ही काव्य की आत्मा है, जो स्वतः चमत्कारमय है, लोकोत्तर-आनन्द-स्वरूप है। अलङ्कार तो बाह्य सौन्दर्य के कृत्रिम साधनमात्र हैं। केवल-अलङ्कार-युक्त रचना को तो वे काव्य उसी रूप में कहते हैं जिस रूप में स्त्री के चित्र को स्त्री कहा जाता है। इसीलिये केवल अलङ्कार-युक्त काव्य को 'चित्र-काव्य' (दूसरे शब्दों में चित्र-रूप काव्य या काव्य का चित्र) कहा गया है, रसवादी उसे वास्तविक काव्य नहीं मानते। इसी विचार से विश्वनाथ ने काव्य के 'ध्वनि' (जिसमें रस या अन्य व्यङ्ग्य की प्रधानता हो) और 'गुणीभूतव्यङ्ग्य' (जिसमें रस या अन्य व्यङ्ग्य किसी का अङ्ग होकर गौण हो गया हो) ये दो ही काव्य के भेद माने हैं, तीसरे भेद चित्र को (जिसमें केवल अलङ्कार हों) नहीं माना।

उक्त मत का पोषक परन्तु उससे कुछ भिन्न मत है ध्वनि (व्यङ्ग्य)-वादियों का। इसके प्रवर्तक और मुखिया हैं ध्वनिकार*। इन्होंने रस की सुन्दर विवेचना की, जिस पर रसवादियों ने विशेष ध्यान नहीं दिया था, और सिद्ध किया कि रस वाच्य नहीं हो सकता; रस-शब्द या शृङ्गार आदि शब्द से इसकी प्रतीति नहीं हो सकती; रस २ या शृङ्गार २ रटते रहने पर भी यह अनुभव में नहीं आ सकता; यह तो काव्य-परिशीलन से विभावादि-सामग्री के द्वारा अभिव्यक्त (प्रकाशित) ही होता है। इसलिये यह व्यङ्ग्य है और काव्य में सर्वोपरि है। रस के अतिरिक्त वस्तु (साधारण अर्थ) और अलङ्कार भी व्यङ्ग्य होते हैं। व्यङ्ग्य-पूर्ण कविता ही उच्च कोटि की कविता है। साधारण कवियों की कविता में व्यङ्ग्य ढूँढ़े भी नहीं मिलता परन्तु महाकवियों की कविता में पद २ में व्यङ्ग्य भरे होते हैं, जिनसे सहृदयों के अन्तःसुप्त भाव स्वयं जागृत हो जाते हैं। इसलिये ध्वनिकार व्यङ्ग्य या

---

*कारिकाकार (जिसका नाम ज्ञात नहीं) और वृत्तिकार आनन्दवर्धनाचार्य, दोनों ने ध्वनिसिद्धान्त को प्रतिष्ठित किया। इसलिये दोनों 'ध्वनिकार' कहाते हैं।

ध्वनि को ही काव्य की आत्मा मानते हैं, वह चाहे रसरूप हो, वस्तुरूप हो या अलङ्काररूप हो।

इनके अतिरिक्त एक और महत्त्व-पूर्ण मत है, जो इन तीनों मतों का समन्वय करता है। यह मत है आचार्य मम्मट का। इस मत में रस-वादियों का रस, ध्वनिवादियों के रस के साथ दूसरे व्यङ्ग्य और अलङ्कार-वादियों के अलङ्कार, ये सभी काव्य के स्वरूप घटक हैं। जहां रस है वहां रचना उसी से काव्य-पद प्राप्त करती है। यदि वहां अलङ्कार भी हों तो वे शब्दार्थ को अलंकृत करते हुए उनके द्वारा रस का ही उत्कर्ष संपादन करते हैं। जहां रस के अतिरिक्त और कोई व्यङ्ग्य हो वहां उसी के चत्कार से रचना काव्य कहलाती है। परन्तु जहां रस या अन्य व्यङ्ग्य कोई न हो, वहां केवल अलंकार ही रचना को काव्य पद प्रदान करते हैं*।

अभिप्राय यह है कि काव्य में चमत्कार ही सार है, जिस रचना में चमत्कार है वही काव्य है। चमत्कार कहीं रस से होता है, कहीं किसी अन्य व्यङ्ग्य से और कहीं अलङ्कार से। अतः रचना को काव्य का रूप देने के लिये तीनों में से किसी एक का होना अत्यन्त आवश्यक और अनिवार्य है, दो या तीनों ही हों तब तो क्या कहना—'अधिकस्याधिकं फलम्'।

उल्लिखित निरूपण के अनुसार संक्षेप में काव्य या कविता का स्वरूप यह हो सकता है:—चमत्कारक-शब्दार्थ-युक्त लोकोत्तरानन्द-प्रद रचना को काव्य कहते हैं।

गुण (माधुर्य, ओज, प्रसाद) रस के धर्म हैं, उसकी शोभा बढ़ाते हैं। जहां रस होगा वहां गुण अवश्य होंगे, धर्म धर्मी से पृथक् नहीं हो सकते; जहां बर्फ होगी वहां शीतलता, जहां आग होगी वहां गर्मी अवश्य होगी। रीतियां गुणों के अनुसार बनती हैं‡। विशिष्टपद-संघटना या रचना-

---

* आचार्य मम्मट का काव्य-लक्षण यह है—"तददोषौ शब्दार्थौ सगुणावनलङ्कृती पुनः क्वापि" अर्थात् निर्दोष, गुण-युक्त, अलङ्कार-युक्त और कहीं (जहां रस या अन्य कोई व्यङ्ग्य स्फुट हो) अस्फुट-अलङ्कार-युक्त भी, शब्द और अर्थ (रचना) ही काव्य है। अर्थ वाच्य, लक्ष्य, व्यङ्ग्य तीन प्रकार का होता है। व्यङ्ग्य से रस और दूसरे व्यङ्ग्य लक्षण में आ जाते हैं।

‡ जैसे, जहां माधुर्य गुण होता है वहां उपनागरिका या वैदर्भी रीति होती है, जहां ओज-गुण होता है वहां परुषा या गौडी और जहां प्रसाद-गुण होता है वहां कोमला या पाञ्चाली।

शैली (Style) को रीति या वृत्ति कहते हैं। अव्यवस्थित और शिथिल शब्दों में कहे हुए सुन्दर भी भाव अभीष्ट प्रभाव नहीं पैदा कर सकते।

दोष कोमल रसों में कर्कश शब्दों का प्रयोग (श्रुति-कटु) और व्याकरण-विरुद्ध भाषा का प्रयोग (च्युत-संस्कृति) आदि रस का अपकर्ष करते हैं, रचना का चमत्कार कम कर देते हैं, इसलिये त्याज्य हैं।

ऊपर लिखी बातें कविता के लिये आवश्यक हैं। वह जिसमें हैं वह रचना कविता है। फिर पाश्चात्य और अर्वाचीन मतों के अनुसार चाहे वह 'जीवन की आलोचना या व्याख्या'[1] हो, चाहे 'किसी युग के प्रधान भावों और उच्च आदर्शों का प्रभावोत्पादक ढंग से प्रकटीकरण' हो[2], चाहे 'सबल एवं स्फूर्तिदायिनी' शक्ति हो, चाहे 'सत्यं शिवं सुन्दरं का समन्वय' हो या और कुछ; एवं चाहे वह पद्यमय हो या गद्यमय, दृश्य हो या श्रव्य, आख्यायिका हो या उपन्यास।

कलाओं में काव्य का स्थान सर्वोच्च है[3], क्योंकि और कलाओं का उपयोग प्रायः बाह्य जीवन में ही होता है, परन्तु काव्य मनुष्य के आन्तर जीवन को प्रभावित करता है। काव्य हमें लोकोत्तर आनन्द देता है और उसके साथ ही अनेक शिक्षाएं भी, जो हमारे जीवन के भिन्न २ भागों और परिस्थितियों में परमोपयोगी सिद्ध होती हैं। काव्य व्यक्तियों के नहीं, समस्त समाज के जीवन को बदल डालता है; उसके दोषों को दूरकर उसमें दिव्य गुण भर देता है। काव्य नायक और प्रतिनायक के चरित्रों को उपस्थित कर और उनके परिणाम प्रदर्शित कर 'रामादिवद् वर्तितव्यं न रावणादिवत्' (राम आदि के समान आचरण करना चाहिये, रावण आदि के समान नहीं), यह उपदेश बड़ी सरसता और रोचकता के साथ देता है। परन्तु यह उपदेश नीतिशास्त्र या धर्मशास्त्र का सा साक्षात् उपदेश नहीं होता; यह उपदेश परोक्ष होता है, आनन्द-विभोर पाठक के हृदय में स्वयं अभि-

---

1 'Poetry is at bottom a criticism of life.'
Mathew Arnold.

2 'Poetry is the most intence expression of the dominant emotions and higher of the age.'
Alfred Lyall.

3 Poetry is the queen of arts.

व्यक्त होता है। गोस्वामी तुलसीदास के रामचरितमानस ने भारतीय जीवन को कितना प्रभावित कर रक्खा है, यह कौन नहीं जानता।

कुछ लोग कहते हैं, कला कला के लिये होती है[1] उसका कोई अन्य उद्देश्य नहीं, और काव्य भी एक कला है, इसलिये उसका भी कोई उद्देश्य नहीं, उपदेश से काव्य का कोई सम्बन्ध नहीं। यह मत काव्यकला के अनुभव-सिद्ध उद्देश्य और उपयोग को देखते हुए कभी ग्राह्य नहीं हो सकता। इस मत वाले केवल बिहारी-सतसई जैसी आश्रय-दाताओं की विकृत रुचि को तृप्त करने के लिये बनाई गई, दुर्वासना-वर्धक रचनाओं की हिमायत और वकालत करते हैं, जो कभी मान्य नहीं हो सकतीं। ऐसी रचनाएं कला के वैचित्र्य की दृष्टि से चाहे ऊंची हों परन्तु जीवन पर पड़ने वाले प्रभाव की दृष्टि से निकृष्ट हैं। विष्णुपुराण में ऐसी ही रचनाओं को त्याज्य कहा गया है—'काव्यालापांश्च वर्जयेत्'।

जब काव्य का उद्देश्य सरसता के साथ शिक्षा देना है तो उसका आदर्श निर्मल और उच्च होना चाहिये; उसके वर्णन यथार्थ, स्वाभाविक और सत्प्रवृत्तियों को जाग्रत करने वाले होने चाहिये; कवि-कल्पना का आधार सत्य होना चाहिये[2]। संक्षेप में, कविता में आदर्शवाद (Idealism) और यथार्थवाद (Realism) का सुन्दर समन्वय होना चाहिये—आदर्श यथार्थ से परे और सर्वथा अप्राप्य न हो तथा आदर्श से च्युत न हो।

प्राचीन हिन्दी कविता और उसकी काव्य-निरूपण-पद्धति संस्कृत के काव्य और साहित्यशास्त्र की अनुगामिनी है। अतः संस्कृत साहित्यशास्त्र के सिद्धान्तों के अनुसार ही यहां संक्षेप से कविता के स्वरूप का निरूपण किया गया है।

कवि कौन है ?

कवि वह महान् कलाकार है जो संवेदनशील हृदय, सूक्ष्म अन्तर्दृष्टि, गम्भीर अनुभूति, कुशाग्रीय प्रतिभा और कमनीय कल्पना से विश्व के कण

---

1 Art for art's sake.

२ आचार्य मम्मट कहते हैं—'यावदवदानं प्रसिद्धमुचितं वा तावदेवोपनिबद्धव्यम्। अधिकं तु निबध्यमानमसत्यप्रतिभासेन नायकवद्वर्तितव्यमित्युपदेशे न पर्यवस्येत्' अर्थात् जितना प्रसिद्ध और उचित हो उतना ही वर्णन करना चाहिये (अस्वाभाविकता और अतिशय कल्पना से बचना चाहिये।) अन्यथा सारा वर्णन असत्य प्रतीत होगा और उपदेशप्रद न हो सकेगा।

कण में विराजमान सत्य और सौन्दर्य को एकत्रित करके उसे आनन्द से अनुप्राणित कर एक ऐसे लोकातीत लोक की सृष्टि करता है, जिसकी झांकी-मात्र से ही मनुष्य के चिर-सुप्त भाव जागृत होकर उसे आनन्द-विभोर कर देते हैं। वह सत्य और आदर्श का आलोक हाथ में लेकर महामोह के अन्धकार में भटकती हुई मानवता को सांसारिकता की बीहड़ घाटियों से निकाल कर प्रेम, सहानुभूति, सुख और शान्ति के खुले वातावरण में ले आता है। वह मनुष्य का पथप्रदर्शक है, व्यवस्थापक है; विपत्ति में उसे धैर्य देता है और विषाद में सान्त्वना। कवि से बढ़कर मनुष्य का निःस्वार्थ उपकारक दूसरा कोई नहीं। वाल्मीकि, व्यास, गोस्वामी तुलसीदास आदि ने मनुष्य समाज का जो उपकार किया है, कर रहे हैं और अनन्त-काल तक करते रहेंगे क्या उसकी तुलना हो सकती है? प्रतिदान हो सकता है? यद्यपि इस आदर्श तक इने-गिने महाकवि ही पहुँचते हैं तथापि यह मानना ही होगा कि वैसे महाकवि अकस्मात् स्वयं ही उत्पन्न नहीं हो जाते किन्तु वे मानवता के गर्भ में चिर-संचित छोटे २ कवियों की भावनाओं और अनुभूतियों के ही फलस्वरूप होते हैं और साधारण कवि भी अधिक नहीं तो मनुष्य की परिश्रान्त घड़ियों में आनन्द-प्रदान तो करते ही हैं।

सामान्यतः कवियों को तीन श्रेणियों में बाँट सकते हैं—

पहली श्रेणी में वे कवि हैं जिनमें कविता की स्वाभाविक कारण-सामग्री न होने पर भी कविता की ओर झुकाव स्वाभाविक होता है। वे लोग अभ्यास करके कथंचित् कुछ शक्ति प्राप्त कर लेते हैं और कभी २ दूसरे (प्राचीन या समकालीन) कवियों की कविताओं अथवा किन्हीं विशेष घटनाओं से उत्तेजना पाकर कविता लिखते हैं। इनकी रचनाएं प्रायः साधारण या मध्यम कोटि की होती हैं, कभी एकाध रचना उत्तम भी बन पड़ती है।

दूसरी श्रेणी में वे कवि आते हैं जिनमें कवित्वशक्ति स्वाभाविक होती है। वे जब चाहें उत्तम कविता रच सकते हैं। उन्हें कहीं से उत्तेजना प्राप्त करने की आवश्यकता नहीं होती। उनकी प्रेरणा अन्दर से आती है। वे अपनी आत्मा को समाज या जाति की आत्मा में मिला देते हैं, उसके सुख-दुख, भाव-अभाव का अनुभव करते हैं और उनकी वाणी में समस्त समाज की, संपूर्ण जाति की, भावनाएं अभिव्यक्त होती हैं। ऐसे कवि उस युग के प्रतिनिधि कहे जाते हैं। वे समाज को अपने व्यक्तित्व से प्रभावित करते हैं, उसकी समस्याओं को सुलझाते हैं, कुसंस्कारों को मिटाते हैं और उसे उन्नति

के मार्ग में अग्रसर करते हैं। भूषण इसी श्रेणी के कवि हैं।

तीसरी श्रेणी में वे कवि हैं जो स्वयं प्रतिभा के अनन्त पारावार होते हैं और जिनकी कृतियों का उपजीवन कर सैंकड़ों नये कवि पैदा हो जाते हैं। वे देश काल की परिधि से परे और जातिसमाज के बन्धनों से मुक्त होते हैं। उनकी वाणी से जो कुछ निकलता है वह देश-विशेष या काल-विशेष की नहीं, समस्त भूमण्डल की, सारी मानवता की संपत्ति हो जाता है।

वे अपनी अद्भुत शक्ति से जो वस्तु सृजन करते हैं वह अलौकिक होती है और सदा अमर, एकरस और एकरूप रहती है। उसके आलोक से पीढ़ियां मार्ग-दर्शन करती हैं और युग नवीन उत्साह प्राप्त करते हैं। ऐसे कवि 'विश्व-कवि' कहलाते हैं और जिस जाति में पैदा होते हैं उसे अमर बना देते हैं। इस श्रेणी के कवि विरले ही होते हैं। वाल्मीकि, व्यास, होमर, तुलसीदास आदि इसी श्रेणी के हैं।

वास्तव में दूसरी और तीसरी श्रेणी के कवि ही सच्चे साहित्य के स्रष्टा और समाज के विधायक तथा उन्नायक होते हैं। ये अपनी कला से बूढ़े प्रजापति की जराजीर्ण सृष्टि का कायाकल्प करते हैं। विश्व को जैसा चाहते हैं वैसा बना देते हैं*। उनकी सुधा-स्यन्दिनी सूक्तियों से जनता विपत्ति में धैर्य, शोक में सान्त्वना, पीड़ा में शान्ति और निराशा में आशा प्राप्त करती है। वे अपने व्यक्तित्व को अपनी कृतियों में विलीन कर उनके द्वारा अनन्त काल तक जनता का अनन्त उपकार करते हैं।

प्राचीन हिन्दी कविता के मूल-तत्त्व और उसकी विशेषताएं—

हिन्दी का संस्कृत से घनिष्ट सम्बन्ध है। हिन्दी का मूल संस्कृत है। हिन्दी में तत्सम-तद्भव शब्दों के साथ चिर-संचित भाव-राशि और ज्ञान-निधि संस्कृत से आई है। हिन्दी का बाह्य और आन्तर सब संस्कृत से बना है। हिन्दी की प्रकृति संस्कृत से अधिक भिन्न नहीं है। इसलिए प्राचीन हिन्दी-कविता के मूल-तत्त्व वही हैं जो संस्कृत-कविता के, वही अलङ्कार, रस, गुण, रीति आदि।

वाल्मीकि, व्यास आदि के समान कबीर, तुलसी आदि सन्त-भक्त कवियों ने अलङ्कारों का उतना ही प्रयोग किया है जितना उनकी भाव-प्रधान सरल-शान्त कविता-कुलवधू की स्वाभाविक सुन्दरता के उत्कर्ष के लिये उचित

---

* "अपारे काव्यसंसारे कविरेकः प्रजापतिः।
यथाऽस्मै रोचते विश्वं तथैव परिवर्तते॥" अग्निपुराण

था। परन्तु हिन्दी के उत्तरकालीन कवि अलङ्कारों के प्रयोग में उत्तरकालीन संस्कृत-कवियों को भी मात कर गये। रीति काल के कवि-कामुकों ने अपनी बाह्याकर्षण-प्रधान कविता वारविलासिनी को अलङ्कारों के उपहारों से इतना लाद दिया कि उनकी चकाचौंध में उसका स्वरूप ही छिप गया।

संस्कृत में वर्णवृत्तों की प्रधानता है परन्तु हिन्दी में मात्रिक छन्दों की। प्राचीन हिन्दी में चन्दवरदाई और केशवदास को छोड़ शायद ही किसी ने वर्णवृत्तों का प्रयोग किया हो। जायसी, तुलसीदास आदि ने दोहा-चौपाई का सफलतापूर्वक प्रयोग किया है। तुलसीदास ने छप्पै, हरिगीतिका, बरवै, सोरठा आदि का भी प्रयोग किया है। सतसइयों में दोहा व्यवहृत हुआ है। कबीर, दादू आदि संत-कवियों ने भी इसका काफ़ी प्रयोग किया है। गिरधरराय और दीनदयाल की कुण्डलियां प्रसिद्ध हैं। परन्तु रीतिकाल की कविता में कवित्त और सवैया ही प्रधान हैं; बहुत बड़ी संख्या इन्हीं छन्दों में लिखने वाले कवियों की है। वास्तव में वर्णवृत्तों की तरह गुरुलघु का बन्धन न होने से मात्रिक छन्दों में और विशेषकर दीर्घकाय कवित्त या सवैया में भाव-प्रकाशन की सुविधा अधिक है। हिन्दी-कविता की धारा पर्वतीय नदी के समान वर्णवृत्तों के तंग मार्ग में बहती हुई अपना चञ्चल नृत्य, उच्छृङ्खल क्रीड़न और स्वाभाविक प्रसार खो बैठती है। इसलिये मात्रिक छन्दों का प्रयोग ही इसके अनुकूल है।

संस्कृत में कविता तुक-हीन होती है परन्तु हिन्दी में वह आरम्भ से ही तुकान्त चली आ रही है। कोई कहते हैं, हिन्दी में तुकान्त कविता फारसी कविता के प्रभाव से आरम्भ हुई है, यह भी होगा। परन्तु असल बात यह है कि वर्ण-वृत्त तुक के बिना भी सज जाते हैं, पर मात्रिक छन्दों का माधुर्य तुक के बिना स्फुटित ही नहीं होता। हिन्दी कविता का संगीतमय प्रभाव मात्रिक छन्दों में ही व्यक्त होता है और मात्रिक छन्दों की मधुरता के लिये राग में 'सम' के समान तुक का होना आवश्यक है।

प्राचीन हिन्दी-कविता में भक्ति, शृङ्गार, वीर और नीति की प्रधानता है। आरम्भिक काल की वीरगाथात्मक विकट, बीहड़, दुन्दुभिध्वनिमय कविता हिन्दुओं की स्वाधीनता के साथ दीर्घकाल के लिये सो गई। आक्रमणकारियों के उद्धत व्यवहार ने जनता को संतप्त, निराश और जीवन से उदास बना दिया। इसी समय कबीर, गुरु नानक, दादू आदि सन्त-कवियों की कविता प्रकट हुई, जिसने निर्गुण-भक्ति का उपदेश देकर जनता की

निरवलम्ब चित्तवृत्ति को ईश्वर की ओर प्रेरित किया। अमीर खुसरो ने अपनी खालिकबारी आदि हिन्दी की रचनाओं द्वारा हिन्दू-मुसलमानों में भाषा की एकता स्थापित करने का प्रयत्न किया और कबीर आदि की कविता दोनों जातियों में भावों की एकता लाने में प्रवृत्त हुई। इसने दोनों जातियों के आधारभूत एक आत्मतत्त्व का उपदेश दिया, मन्दिर मस्जिद, पूजा-पाठ, रोज़ा-नमाज़ आदि बाह्याडम्बरों की निन्दा की, और परस्पर प्रेमपूर्वक सदाचारमय, सरल, शान्त, जीवन व्यतीत करने की ओर प्रेरणा की। सन्तों की कविता में भाषा की प्राञ्जलता न होने पर भी भावों की प्राञ्जलता अनूठी है। इसमें अन्तर्वेदना है, अनुभूति है, रहस्यवाद है, आत्माभिव्यक्ति है, और विलक्षण प्रभाव है। अलङ्कार योजना इसका लक्ष्य नहीं इसमें भावों की ही प्रधानता है और भाव के अनुकूल अलङ्कार इसमें स्वतः आ गये हैं।

जायसी आदि प्रेममार्गी सूफी कवियों की प्रेमगाथामय कविता का लक्ष्य प्रेम है, जिसे उन्होंने ईश्वर-प्राप्ति का साधन माना है। इसके द्वारा उन्होंने हिन्दू-मुसलमानों के व्यावहारिक जीवन की एकता का आभास दिया। प्रेममार्गी कविता में आत्मा तथा प्रकृति में विद्यमान रागात्मक सम्बन्ध, जीव और ईश्वर के अलौकिक प्रेम तथा मधुर रहस्यवाद की मनोरम अभिव्यञ्जना हुई है। रति, शोक आदि भावों की अभिव्यक्ति मार्मिक है इसमें भी सन्त-कविता के समान भाव-चित्रण की प्रधानता होने से अलङ्कार-योजना उचित से अधिक नहीं है।

सन्त-कवियों ने जो ईश्वर के निर्गुण स्वरूप की उपासना का उपदेश दिया, उससे लोगों की मनोवृत्ति परितृप्त नहीं हुई। वह वैसे ईश्वर से अपने दुःखों की निवृत्ति की संभावना न कर सके। उनकी तृप्ति तभी हो सकती थी जब ईश्वर उन्हीं की तरह शरीरधारी हो, उनकी पुकार सुनकर दौड़ा चला आए और दुष्टों का ध्वंस कर डाले, जिसमें शक्ति, शील और सौन्दर्य का आकर्षण हो। जनता की इसी भावना ने सगुणोपासना की नींव डाली। रामानन्द और वल्लभ जैसे आचार्यों ने राम और कृष्ण को ईश्वर का अवतार मानकर उनकी उपासना का उपदेश किया। फलतः भक्तितरु की राम-भक्ति और कृष्ण-भक्ति नाम की दो शाखाएं प्रस्फुटित हुईं।

राम भक्त कवियों में तुलसीदास सर्वोपरि हैं और उनकी कविता में सर्वश्रेष्ठ 'रामचरितमानस' है। उन्होंने सन्त कवियों के पूजा-पाठ के बहिष्कार और वर्णाश्रम-विरोधी प्रचार से फैलती हुई अव्यवस्था और प्रात्यहिक

संसर्ग से पड़ने वाले मुसलमानी प्रभाव से आर्य-संस्कृति की रक्षा करने, सांप्रदायिक भेदभाव को मिटाने और लोगों के सामने मनुष्य-जीवन के ऊंचे आदर्श उपस्थित करने के लिये कविता का प्रयोग किया, भक्ति के साथ लोक संग्रह का समन्वय किया, जिसकी सन्त-कवियों और कृष्ण-भक्त कवियों ने उपेक्षा की थी। उन्होंने स्वयं तो अपनी कविता का उद्देश्य 'स्वान्तःसुख' कहा है परन्तु उन जैसे परोपकारी महात्मा के लिये उक्त उद्देश्यों की सिद्धि से बढ़कर और 'स्वान्तःसुख' क्या हो सकता है। उनकी कविता जीवन-व्यापिनी और हृदयस्पर्शिनी है। इसका विवेचन आगे 'संग्रह' में किया गया है, यहाँ पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं।

कृष्ण-भक्त कवियों में सूरदास जी शिरोमणि हैं। कृष्ण-भक्ति शाखा में इन्हीं की कविता आदर्श है। इस शाखा के अन्य कवियों ने इसी का अनुसरण किया है। इसका विवेचन आगे 'संग्रह' में किया गया है। कृष्ण-भक्त कवियों की कुञ्ज-कुटीर-वासिनी कविता-कोमलाङ्गी व्रजमण्डल के उपवनों में ही स्वच्छन्द विहार करती रही है। कभी कुतूहलवश भी हस्तिनापुर के राज-नीति-कानन की ओर पग उठाना या कुरुक्षेत्र के रणक्षेत्र की बात चलाना उसकी प्रकृति के विरुद्ध था। उसने श्रीकृष्ण के मञ्जुल गोपालरूप को ही चित्रित किया और उसकी अलौकिक छवि में ऐसी भूली कि उनके लोकनायक, महारथ, योगेश्वर आदि दूसरे रूपों का उसे ध्यान ही न आया।

अब समय ने पलटा खाया। सूरदास आदि कृष्ण-भक्त कवियों ने जो राधाकृष्ण-प्रेमसम्बन्धी दिव्य श्रृङ्गार का वर्णन किया था उसकी ओट में कवियों ने लौकिक श्रृङ्गार का वर्णन आरम्भ कर दिया। कविता को भक्त-कुटीरों से उठाकर राज-दरबारों में ला खड़ा किया और वहीं रहने के लिये बाधित किया। अगत्या वह बेचारी अपने हृदय के भावों को दबाकर आश्रय-दाताओं की रुचि के अनुकूल उनकी दुर्वासनामत्त दृष्टि का रञ्जन करने के लिये अपने आप को नख से शिख तक अलङ्कारों से सजाने लगी और धीरे २ इस कृत्रिमता में ही रस गई, बाहरी दुनिया को भूल गई; जन-साधारण से उसका सम्बन्ध छूट गया। यह था रीति-काल। यह कला का युग था। कवि भी कला के उपासक हो गये। यहां तक कि जो कला सौन्दर्याभिव्यक्ति का साधन थी उसी को साध्य बना लिया। कल्पना की उड़ान में होड़ लग गई। अतिशयोक्तियाँ गप्पोक्तियों से बढ़ गईं, भद्देपन की सीमा पार कर गईं। एकमात्र श्रृङ्गार ही कविता का विषय बन गया; नायिकाभेद और नखशिख

का मीनाबाज़ार सज गया। प्रकृति को नायिका की चेरी बना दिया और जीवन को उसका गुलाम।

इस काल में केशवदास आदि ने संस्कृत की परिपाटी पर जो रीतिग्रंथ लिखे उनका उद्देश्य भी काव्य-कला का प्रदर्शन ही था। इसीलिये उनमें संस्कृत-ग्रंथों के समान साहित्य का विशद विवेचन नहीं हो पाया। संस्कृत के आचार्यों ने दूसरों के उदाहरणों को लेकर उन पर छानबीन की है परन्तु हिन्दी में कवियों ने स्वयं लक्षण लिखकर स्वयं उदाहरण रचे। छानबीन का अवसर ही न आया। फिर भी इन उदाहरणों के रूप में एक विशाल मुक्तक-साहित्य तय्यार हो गया, जो अलङ्कार-योजना और उक्तिवैचित्र्य में अनूठा है और अनुप्रास के बाहुल्य में तो संसार के सब साहित्यों से बढ़कर है। संक्षेप में, इस काल की कविता प्रायः बाह्य चमत्कार और उक्ति-वैचित्र्य के कारण विस्मय उत्पन्न करती है, लोकोत्तर आनन्द नहीं; मस्तिष्क को उत्तेजित करती है, हृदय को द्रवीभूत नहीं।

इस काल के प्रायः सभी कवि शृङ्गार की बढ़िया में बह गये, केवल दो-चार ही कवि अपवादस्वरूप हुए, जिन्होंने वीररस को अपनी कविता का विषय बनाया। इनमें प्रधान थे भूषण, जिन्होंने छत्रपति शिवा जी को अपनी कविता का नायक बनाया, तत्कालीन हिन्दु-समाज के भावों को अभिव्यक्त करके उसका प्रतिनिधित्व किया और उसमें नवीन उत्साह का संचार भी किया। इनकी कविता का विवेचन 'संग्रह' में किया गया है।

इसके अतिरिक्त वृन्दसतसई, रहीम के दोहे आदि नीति-सम्बन्धी मुक्तकरचनाएं भी अच्छी हुई हैं,जो लोगों को सुन्दर व्यावहारिक शिक्षा देती हैं।

वीरगाथा-काल के बाद प्राचीन हिन्दी में रामचरितमानस (जो हिन्दी का सर्वश्रेष्ठ प्रबन्ध-काव्य है), और पद्मावत के अतिरिक्त रामचन्द्रिका, छत्र-प्रकाश आदि दो-चार ही प्रबन्ध काव्य देखने में आते हैं और वह भी सफल नहीं हुए। वास्तव में हिन्दी के कवि (विशेषकर रीतिकाल के) मुक्तक-रचना में ही सिद्धहस्त थे, प्रबन्ध-रचना में नहीं। मुक्तक-रचना (एक पद्य में सुन्दर ढंग से एक बात कहना) कठिन नहीं परन्तु प्रबन्ध-काव्य में प्रबन्ध-कल्पना सम्बन्ध-निर्वाह और अपेक्षित रस-सामग्री द्वारा पूर्ण प्रवाह पैदा करना, जिसमें पाठक मग्न हो जाएं, साधारण बात नहीं। यही कारण है कि आचार्य केशवदास भी प्रबन्ध-रचना में सफल नहीं हुए, उनकी रामचन्द्रिका प्रबन्ध-काव्य की दृष्टि से किसी काम की नहीं; कोई २ प्रसङ्ग जो अच्छे

बन पाये हैं उनका कारण रामचरित के उन अंशों की स्वतः सुन्दरता और लोक-प्रियता है, न कि कविकौशल। एवं सुजानचरित (सूदन) और हिम्मतबहादुरबिरुदावली (पद्माकर) में कोरी बन्दूक तोपों की धड़ाधड़ और घोड़ों-हाथियों तथा अस्त्र-शस्त्रों की सूचियों का विस्तार बहुत खलता है। भूषण जैसा प्रकाण्ड कवि भी प्रबन्ध-रचना न कर सका और मुक्तकों में ही अपना सिंहगर्जन कर रह गया तो औरों की क्या बिसात।

संक्षेप में, प्राचीन हिन्दी कविता संस्कृत-कविता के आदर्श पर चली; भेद केवल छन्द, तुक आदि में हुआ, जो उसके स्वाभाविक प्रकृति-भेद का परिचायक है। यह गङ्गा के समान निर्गुण-ब्रह्म रूप उत्तुङ्ग अगम हिमालय-शृङ्ग से निकल सगुणोपासना की वेगवती धारा से राम-भक्ति की मनोरम घाटियों-तराइयों से होती हुई कृष्ण-भक्ति के स्वच्छ-सुन्दर, विशाल मैदान को पार कर कुत्सित शृङ्गार के अपेय पारावार में गिरी और अपना स्वरूप खो बैठी।

प्रस्तुत संग्रह—

प्रस्तुत संग्रह के तय्यार करने के लिये कालक्रम के अनुसार निम्नलिखित दस प्रतिष्ठित प्रतिनिधि कवि लिए गये हैं:—सन्तों में से कबीर और नानक, प्रेम-मार्गियों में से जायसी, राम-भक्तों में से तुलसीदास, कृष्ण-भक्तों में से सूरदास और मीरा तथा रीति-कालीन चमत्कारवादियों में से केशव, बिहारी, भूषण और पद्माकर। इनकी कविताओं में से शृङ्गार को छोड़ सरल और सुन्दर खण्डों का चयन किया गया है। प्रत्येक कवि की कविताओं के आरम्भ में उस कवि तथा उसकी कविता का परिचय दे दिया गया है ताकि विद्यार्थियों को कविताओं के समझने और रसास्वादन करने में सुविधा और उन कवियों तथा कविताओं के सम्बन्ध में अपनी धारणाएं निश्चित करने में सहायता प्राप्त हो।

इस संग्रह के प्रस्तुत करने में मैंने अनेक पुस्तकों से सहायता ली है, जिसके लिये मैं उनके विद्वान् लेखकों तथा संपादकों का हृदय से आभर स्वीकार करता हूँ।

कृष्णनगर, लाहौर]

रामचन्द्र कुशल

महात्मा कबीरदास

परिचय—हिन्दी के सन्त-कवियों में महात्मा कबीरदास प्रथम और प्रधान हैं। इनका जन्म संवत् १४५६* में और मृत्यु संवत् १५७५ † में मानी जाती है। जनश्रुति के अनुसार यह बात प्रसिद्ध है कि इनका जन्म काशी में एक विधवा ब्राह्मणी से हुआ था। वह लोकापवाद के डर से इन्हें 'लहरतारा' तालाब के समीप फेंक आई। दैव-वश 'नीरू' नामक मुसलमान जुलाहा अपनी स्त्री 'नीमा' के साथ उधर से गुजरा और नवजात शिशु को पड़ा देख उठाकर घर लेगया। इस प्रकार कबीर जी हिन्दू-गृह में जन्म लेकर भी मुसलमान जुलाहे के रूप में प्रख्यात हुए। उन्होंने स्वयं भी कहा है—

"तैं बाम्हन मैं कासी का जुलहा बूझहु मोर गियाना"

बचपन से ही इनकी हिन्दूधर्म में आस्था और ईश्वर-भक्ति में प्रवृत्ति थी। यह तिलक लगाते, माला पहनते और रामनाम जपा करते थे। अवस्था के साथ इनका ज्ञान और अनुभव बढ़ता गया और ये बाह्याडम्बरों से घृणा करने लगे। इन्होंने खूब देशाटन किया और सत्सङ्ग भी। यह नये भजन बनाकर गाते और उपदेश भी करते थे परन्तु लोग सुनते नहीं थे, क्योंकि यह अभी तक निगुरे थे। इन्होंने एक युक्ति से स्वामी रामानन्द जी को, जिनका प्रभाव उस समय चारों ओर फैल रहा था, अपना गुरु बनाया। एक दिन बड़े सबेरे यह 'पंचगंगा' घाट की सीढ़ियों पर लेट रहे। रामानन्द जी स्नान करने आये। अँधेरे में उनका पाँव कबीर जी के शरीर पर पड़ा और झट उनके मुख से निकला 'राम राम'। कबीर जी ने इसी को गुरु-मन्त्र मान लिया और उनके चरण पकड़ कर कहा कि महाराज मुझे आपसे राम

---

* चौदह सै पचपन साल गये, चन्द्रवार एक ठाठ ठये।
जेठ सुदी बरसायत को, पूरनमासी प्रगट भये॥
पचपन साल गये=पचपन साल बीतने पर अर्थात् ५६ साल में

† संवत् पंद्रह सै पछत्तरा कियो मगहर को गौन।
माघ सुदी एकादसी रलौ पौन में पौन॥

नाम की दीक्षा मिल गई; मैं आपका शिष्य हो गया। उन्होंने प्रसन्न होकर इन्हें छाती से लगा लिया। तभी से यह रामानन्द जी के शिष्य कहलाए और जीवन-भर उनके गुण गाते रहे *। इन्होंने अपने निर्वाह के लिये अपने पालने वाले माँ-बाप के काम (कपड़ा बुनने) को ही अपनाया; विवाह किया; संतान पैदा की; और संसार के सुख-दुःखों का अनुभव करते हुए भी सदा निर्लिप्त रहे, गृहस्थ होकर भी संन्यासी बने रहे।

सिद्धान्त—कबीरजी ने अद्वैतवाद और ज्ञान-मार्ग की बातें हिन्दू साधु-संन्यासियों से, भक्ति-तत्त्व रामानन्दजी से और रहस्यवाद की शैली तथा प्रेम-तत्त्व सूफी संप्रदाय के मुसलमान फकीरों से ग्रहण कर एक स्वतन्त्र पंथ चलाया, जो 'कबीर पंथ' के नाम से प्रसिद्ध है। यह धार्मिक विचारों में स्वतन्त्र, निर्भीक, स्पष्टवादी थे और मूर्तिपूजा, हिंसा, मन्दिर, मस्जिद, नमाज़, रोजा आदि के कट्टर विरोधी थे। हिन्दू और मुसलमान दोनों के बाह्याडम्बरों की इन्होंने कड़ी आलोचना की और राम-रहीम की एकता समझाकर दोनों जातियों के भेदभाव को दूर करने का प्रबल प्रयत्न किया। यद्यपि इनकी कड़ी आलोचनाओं को न सह कर बहुत से लोग इनके शत्रु हो गए और इन्हें अनेक कष्ट सहने पड़े तथापि अन्त में इन्हीं की विजय हुई। इनके उपदेशों से प्रभावित होकर हिन्दू और मुसलमान दोनों इनके शिष्य बन गये। यह इतने सर्वप्रिय हो गए थे कि जब इनकी मृत्यु हुई तो इनके अन्तिम संस्कार पर हिन्दू-मुसलमानों में झगड़ा हो गया—हिन्दू इनके शव को जलाना चाहते थे और मुसलमान दफ़नाना। जब चादर उठाई गई तो शव के स्थान पर फूलों का ढेर मिला। आधे फूल हिन्दुओं ने काशी में ले जाकर जलाए और उसी स्थान पर 'कबीरचौरा' बनाया और आधे मुसलमानों ने मगहर में, जहाँ इनकी मृत्यु हुई थी, गाड़े और कब्र बनाई। ये दोनों स्थान अब भी पूजे जाते हैं।

कविता—कबीर जी पढ़े लिखे न थे पर इनकी प्रतिभा इतनी प्रखर और अनुभव इतना गहरा था कि यह जीवन की अति साधारण बात के समान ऊँचे धार्मिक विचारों और गंभीर दार्शनिक सिद्धान्तों को भी सरल

* काशी में हम प्रकट भये रामानन्द चिताये।

भाषा में चमत्कारजनक एवं हृदयस्पर्शी ढंग से कहते थे। उपमा, रूपक, अतिशयोक्ति, अन्योक्ति आदि के सहारे रहस्य भावनाओं की मनोरम अभिव्यञ्जना करते थे। इनकी कविता में भाव के अनुसार माधुर्य या ओज स्वतः आ गये हैं। इनका विशेष लक्ष्य भाव की ओर रहता था, इसीलिए भाषा-सौष्ठव की यह अधिक परवाह नहीं करते थे। इनकी वाणी का संग्रह 'बीजक' कहलाता है, जिसके तीन भाग हैं—रमैनी, साखी, शब्द। इनमें वेदान्ततत्त्व, प्रेम, भक्ति, हृदयशुद्धि, संसार की अनित्यता, हिन्दू मुसलमानों को फटकार, साधारण उपदेश आदि अनेक विषय हृदयग्राही रूप से कहे हैं। बीजक की भाषा में खड़ी बोली, अवधी, बिहारी, व्रजभाषा, पंजाबी आदि कई बोलियों का मेल है। कविता बहुधा कर्कश हो गई है। वाक्यविन्यास व्याकरणानुसारी नहीं है। ग्राम्य शब्दों की अधिकता है। कहीं-कहीं दुर्बोधता भी आ गई है इन दोषों के होते हुए भी कबीर जी की कविता में वह साहित्यिक सरसता, वह अन्तर्वेदना, वह सूक्ष्मपर्यवेक्षण, वह व्यक्तित्व की अद्भुत छाप विद्यमान है, जिसके कारण यह एक सच्चे और ऊँचे कवि ही नहीं, कवियों के प्रेरक और उपजीव्य हैं, हिन्दी साहित्य के मूल स्रोतों में से एक हैं।

कबीर जी कहीं संतप्त मानवता के प्रतिनिधि बनकर उसका दुःख प्रकट करते हैं, कहीं उसके संताप से द्रवीभूत होकर आँसू बहाते हैं, कहीं उसे कुमार्ग पर जाते देख पथप्रदर्शक और नेता का काम करते हैं, कहीं सिरफुटौवल पर तुली हुई दो जातियों को फटकार बताते हैं, और कहीं पर रहस्य के जानकार के रूप में संसार को उसे अपने निराले ढंग से समझाने का यत्न करते हैं। इस प्रकार महाकवियों से भी ऊँची भूमिका पर बैठे हुए कबीर जी को बड़े २ तत्त्वदर्शी आलोचक भी आश्चर्यवत् देखते हैं। यही उनकी प्रधान विशेषता है।

प्रकृत—आगे दिये गये दोहे तथा भजन कबीर जी की उक्त विशेषताओं का दिग्दर्शन कराने के लिये पर्याप्त हैं। सरलता, स्वाभाविकता और भावों की हृदयग्राहिता सर्वत्र विद्यमान है। बात कहने का ढंग निराला है। अलङ्कार विन्यास स्वाभाविक और उत्कृष्ट है। (देखिए दोहे ३, ६, १४, १७, ३२, ३४, ३५. शब्द ७, ८, ९)।

साखियां (दोहे)

सद्गुरु

गुरु गोबिंद दोऊ खड़े का के लागौं पाँय।
बलिहारी गुरु आपने गोबिंद दियो बताय ॥ १ ॥
कबिरा ते नर अंध हैं हरि को कहते और।
हरि रूठे गुरु ठौर है गुरु रूठे नहिं ठौर ॥ २ ॥
गुरु कुम्हार सिष कुम्भ है गढ़ गढ़ काढ़े खोट।
अंतर हाथ सहार दै बाहर मारै चोट ॥ ३ ॥
चौंसठ दीवा जोय कै चौदह चंदा माहिं।
तेहि घर किसका चांदना जेहि घर सतगुरु नाहिं ॥ ४ ॥
यह तन विष की बेलरी गुरु अमृत की खान।
सीस दिये जो गुरु मिले तौ भी सस्ता जान ॥ ५ ॥
सब धरती कागद करूँ लेखनि सब बनराय।
सात समुँद की मसि करूँ गुरु-गुन लिखा न जाय ॥ ६ ॥
मैं अपराधी जनम का नख सिख भरा विकार।
तुम दाता दुखभंजना मेरी करो सम्हार ॥ ७ ॥
क्या मुख लै बिनती करौं लाज आवत है मोहिं।
तुम देखत औगुन करौं कैसे भावौं तोहिं ॥ ८ ॥
साहेब तुम जनि बीसरो लाख लोग लगि जाहिं।
हमसे तुमरे बहुत हैं तुम-सम हमरे नाहिं ॥ ९ ॥
मेरा मुझ में कुछ नहीं जो कुछ है सो तोर।
तेरा तुझको सौंपते क्या लागत है मोर ॥ १० ॥
तुम तो समरथ साँइयाँ दृढ़ करि पकरो बाँहिं।
धुर ही लै पहुँचाइयो जनि छाँडो मग माहिं ॥ ११ ॥

प्रेम

प्रेम न बाड़ी उपजै प्रेम न हाट बिकाय।
राजा परजा जेहि रुचै सीस देइ लै जाय ॥ १२ ॥

सीस उतारै भुइँ धरै तापर राखै पाँव।
दास कबीरा यों कहै ऐसा होय तो आव ॥१३॥
उठा बगूला प्रेम का तिनका उड़ा अकास।
तिनका तिनका से मिला तिनका तिनके पास ॥१४॥
प्रीतम को पतियाँ लिखूँ जो कहुँ होय विदेस।
तन में मन में नैन में ताको कहा सँदेस ॥१५॥
अगिनि आंच सहना सुगम सुगम खड़ग की धार।
नेह निभावन एकरस महाकठिन व्योहार ॥१६॥

स्मरण

माला फेरत जुग भया मिटा न मन का फेर।
कर का मनका डारि दे मन का मनका फेर ॥१७॥
माला तो कर में फिरै जीभ फिरै मुख माहिं।
मनुवाँ तो दहुँ दिसि फिरै यह तो सुमिरन नाहिं ॥१८॥
तूँ तूँ करता तूँ भया मुझ में रही न हूँ।
वारी तेरे नाम पर जित देखूँ तित तूँ ॥१९॥

विश्वास

कबिरा क्या मैं चिंतहूँ मम चिंते क्या होय।
मेरी चिंता हरि करैं चिंता मोहिं न कोय ॥२०॥
साईं इतना दीजिए जामें कुटुँब समाय।
मैं भी भूखा ना रहूँ साधु न भूखा जाय ॥२१॥
गाया जिन पाया नहीं अनगाए तें दूरि।
जिन गाया बिस्वास गहि ताके सदा हजूरि ॥२२॥

कथनी और करनी

करनी बिन कथनी कथै अज्ञानी दिन रात।
कूकर ज्यों भूँकत फिरै सुनी-सुनाई बात ॥२३॥

संतजन

सिहन के लहँडे नहीं हंसन की नहिं पाँत।
लालन की नहि बोरियां साधु न चलैं जमात ॥२४॥

जाति न पूछो साधु की पूछि लीजिए ज्ञान।
मोल करो तरवार का पड़ा रहन दो म्यान ॥२५॥
साधू भूखा भाव का धन का भूखा नाहिं।
धन का भूखा जो फिरै सो तो साधू नाहिं ॥२६॥
समुझि बूझि जड़ ह्वै रहै बल तजि निर्बल होय।
कह कबीर ता सत के पला न पकड़ै कोय ॥२७॥
हद्द चलै सो मानवा बेहद चलै सो साध।
हद बेहद दोनों तजै ताको मता अगाध ॥२८॥
हरि से तू जनि हेत कर कर हरिजन से हेत।
माल-मुलुक हरि देत हैं हरिजन हरि ही देत ॥२९॥
सोना सज्जन साधु जन टूटि जुरै सौ बार।
दुर्जन कुम्भ कुम्हार के एकै धका दरार ॥३०॥
साधू गाँठि न बाँधई उदर-समाता लेय।
आगे पाछे हरि खड़े जब माँगे तब देय ॥३१॥

चेतावनी

झूँठे सुख को सुख कहैं मानत हैं सब मोद।
जगत चबेना काल का कुछ मुख में कुछ गोद ॥३२॥
ऐसा यह संसार है जैसा सेमर फूल।
दिन दस के व्यौहार में झूठे रंग न भूल ॥३३॥
इक दिन ऐसा होयगा कोउ काहू का नाहिं।
घर की नारी को कहै तन की नारी जाहिं ॥३४॥
चलती चक्की देख कर दिया कबीरा रोय।
दो पाटन के बीच में साबित रहा न कोय ॥३५॥
दस द्वारे को पींजरा तामें पंछी पौन।
रहिबे को आचरज है जाय तो अचरज कौन ॥३६॥

उपदेश

दुर्बल को न सताइए जाकी मोटी हाय।
बिना जीव की स्वाँस ते लोह भसम ह्वै जाय ॥३७॥

हस्ती चढ़िए ज्ञान को सहज दुलोचा डारि।
स्वानरूप संसार है भूसन दे झख मारि ॥३८॥
आवत गारी एक है उलटत होय अनेक।
कह कबीर नहिं उलटिए वही एक की एक ॥३९॥
तीरथ चाले दुइ जना चित चंचल मन चोर।
एकौ पाप न उतरिया मन दस लाए और ॥४०॥
आव गई आदर गया नैनन गया सनेह।
ये तीनों तब ही गये जबहि कहा कछु देह ॥४१॥
बड़ा हुआ तो क्या हुआ जैसे पेड़ खजूर।
पंथी को छाया नहीं फल लागै अति दूर ॥४२॥
प्रभुता को सब कोउ भजै प्रभु को भजै न कोय।
कह कबीर प्रभु को भजै प्रभुता चेरी होय ॥४३॥
दोष पराया देखिकै चले हसंत हसंत।
अपने याद न आवई जाकौ आदि न अंत ॥४४॥
जो जल बाढ़ै नाव में घर में बाढ़ै दाम।
दोऊ हाथ उलीचिये यहि सज्जन को काम ॥४५॥
गोधन गजधन बाजिधन और रतनधन खान।
जब आवै संतोष धन सब धन धूरि समान ॥४६॥
कबिरा नवै सो आपको पर को नवै न कोय।
घालि तराजू तौलिए नवै सो भारी होय ॥४७॥
साँचै स्राप न लागई साँचे काल न खाय।
साँचे को साँचा मिलै साँचे माहिं समाय ॥४८॥
मन के मते न चालिये मन के मते अनेक।
जो मन पर असवार सो साधू कोई एक ॥४९॥

शब्द (भजन)

(१)

जिनके नाम ना है हिए।
क्या होवै गल माला डाले कहा सुमिरनी लिए ॥

क्या होवै पुस्तक के बाँचै कहा संख-धुनि किए ॥
क्या होवै कासी में बसिकै क्या गंगा-जल पिए ॥
होवै कहा बरत के राखे कहा तिलक सिर दिए ॥
कहैं कबीर सुनो भाई साधो जाता है जम लिए ॥

(३)

साधो सतगुर अलख लखाया
आप आप दरसाया ॥
बीज मध्य ज्यों बृच्छा दरसै
बृच्छा मध्ये छाया ।
परमातम में आतम तैसे
आतम मध्ये माया ॥
आपहि बृच्छ बीज अंकूरा
आप फूल फल छाया ।
आपहि सूर किरिन परकासा
आप ब्रह्म जिव माया ॥
हम सब माहिं सकल हम माहिं ।
हम थैं और दूसरा नाहीं ॥
तीन लोक में हमरा पसारा ।
आवागमन सब खेल हमारा ॥
खट दरसन कहियत हम भेखा ।
हमहिं अतीत रूप नहिं रेखा ॥
हमहीं आप कबीर कहावा ।
हमहीं अपना आप लखावा ॥

(४)

ना जाने तेरा साहेब कैसा ।
महजिद भीतर मुला पुकारै क्या साहेब तेरा बहिरा है ।
चिउँटी के पग नेवर बाजै सो भी साहेब सुनता है ॥

पण्डित होय के आसन मारै लंबी माला जपता है।
अंतर तेरे कपट-कतरनी सो भी साहेब लखता है॥
ऊँचा नीचा महल बनाया गहरी नेव जमाता है।
चलने का मनसूबा नाहीं रहने को मन करता है॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी गाड़ि जमीं में धरता है।
जेहि लहना है सो लै जैहै पापी बहि बहि मरता है॥
सतवंती को गजी मिलै नहिं वेश्या पहिरे खासा है।
जेहि घर साधू भीख न पावै भँडुवा खात बतासा है॥
हीरा पाय परख नहिं जानै कौड़ी परखन करता है।
कहत कबीर सुनो भाई साधो हरि जैसे को तैसा है॥

संतो राह दोऊ हम दीठा।
हिन्दू तुरुक हटा नहिं मानै, स्वाद सबन को मीठा।
हिन्दू बरत एकादसि साधै, दूध सिंघाड़ा सेती।
अन को त्यागै मन नहिं हटकै, पारन करै सगोती॥
रोजा तुरुक नमाज गुजारै, बिसमिल बाँग पुकारै।
उनकी भिस्त कहाँ ते होइहै, साँझे मुरगी मारै॥
हिन्दू दया मेहर को तुरकन, दोनों घट सों त्यागी।
वै हलाल वै झटका मारैं, आगि दुहूँ घर लागी॥
हिन्दू तुरुक की एक राह है, सतगुरु इहै बताई।
कहै कबीर सुनो हो संतो, राम न कहेउ खोदाई॥

(६)

दुइ जगदीस कहाँ ते आए कहु कौने भरमाया।
अल्ला राम करीम केसव हरि हजरत नाम धराया॥
गहना एक कनक ते गहना तामें भाव न दूजा।
कहन सुनन को दुइ कर थापै इक नेवाज इक पूजा॥
वही महादेव वही मुहम्मद ब्रह्मा आदम कहिये।
कोई हिन्दू कोई तुरुक कहावै एक जमीं पर रहिये॥

वेद किताब पढ़े वे कुबवा वे मौलाना वे पांडे।
बिगत बिगत के नाम धरायो यक माटी के भांडे॥
कहै कबीर वे दोनों भूले रामहिं किनहुँ न पाया।
वे खसिया वे गाय कटावैं बादै जनम गँवाया॥

(७)

साधो यह तन ठाठ तंबूरे का।
ऐंचत तार मरोरत खूँटी निकसत राग हजूरे का।
टूटे तार बिखरि गई खूँटी हो गया धूरमधूरे का॥
या देही का गरब न कीजै उड़ि गया हंस तंबूरे का।
कहत कबीर सुनो भाई साधो अगम पंथ कोई सूरे का॥

(८)

झीनी झीनी बीनी चदरिया।
काहे कै ताना काहे कै भरनी, कौन कै तार से बीनो चदरिया।
इँगला पिंगला ताना भरनी, सुखमन तार से बीनी चदरिया॥
आठ कवँल दल चरखा डोलै, पाँच तत्त गुन तीनी चदरिया।
साईं को सियत मास दस लागे, ठोक ठोक कै बीनी चदरिया॥
सो चादर सुर नर मुनि ओढ़ैं, ओढ़िकै मैली कीनी चदरिया।
दास कबीर जतन से ओढ़ी, ज्यों की त्यों धरि दीनी चदरिया॥

(९)

मन मस्त हुआ तब क्यों बोलै॥
हीरा पायो गाँठ गठियायो
बार बार वाको क्यों खोलै।
हलकी थी जब चढ़ी तराजू
पूरी भई तब क्यों तोलै॥
सुरत कलारी भई मतवारी
मदवा पीगई बिन तोलै।
हंसा पाये मानसरोवर
ताल-तलैया क्यों डोलै॥

तेरा साहिब है घट माहीं
बाहर नैना क्यों खोलै।
कहै कबीर सुनो भाई साधो
साहिब मिल गये तिल ओलै॥

(१०)

लोका मति को भोरा रे।
जो कासी तन तजै कबीरा रामै कहा निहोरा रे॥
राम भगति पर जाको हित चित ताको अचरज काहा।
गुरु प्रताप साधु संगति जग जीतै जाति जुलाहा॥
कहत कबीर सुनो रे संतो भरम परै जनि कोई।
जस कासी तस मगहा ऊसर हृदै राम जो होई॥

गुरु नानक

परिचय—गुरु नानक जी कबीर जी के मत के सहारे उठने वाले संप्रदायों में सबसे प्रबल और महत्त्वशाली सिक्ख-उम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक हैं। इनका जन्म संवत् १५२६ कार्तिक पूर्णमासी के दिन जिला लाहौर की तहसील शरकपुर के तलवंडी ग्राम में कालूचन्द खत्री की धर्मपत्नी तृता की कोख से हुआ। नानक जी बचपन से ही साधु प्रकृति के थे और साधु-संगति तथा साधु सेवा में प्रेम रखते थे। संवत् १५४५ में गुरदासपुर के मूलचन्द खत्री की कन्या सुलक्षणी से इनका विवाह हुआ। इनके दो पुत्र हुए श्रीचन्द और लक्ष्मीचन्द। श्रीचन्द ने आगे चलकर उदासी सम्प्रदाय की स्थापना की।

नानक जी सांसारिक व्यवहारों से उदासीन ही रहा करते थे। पिता ने कई बार यत्न किया कि यह कुछ काम करें परन्तु इन्होंने किसी भी काम में चित्त नहीं दिया। एक बार इनको कुछ रुपये व्यापार के लिये दिये। इन्होंने सब साधुओं को बाँट दिए और पूछने पर उत्तर दिया कि मैंने सच्चा सौदा किया है। धीरे २ विरक्ति यहाँ तक बढ़ी कि इन्होंने घर छोड़ दिया और संवत् १५५३ से १५७९ तक निरन्तर यात्रा की। इस यात्रा

में इन्होंने सारे हिन्दुस्तान का ही नहीं, लंका, शिकम, भूटान, मक्का, मदीना, जद्दा, रूम, बगदाद, ईरान, काबुल, कंधार आदि अन्य देशों का भी पर्य्यटन किया। यह जहाँ जाते वहीं लोग इनके तत्त्वपूर्ण, सरल, हृदय-स्पर्शी उपदेशों से प्रभावित होते और लाभ उठाते। अन्तिम १६ वर्ष इन्होंने करतारपुर में रहकर सिक्खसम्प्रदाय की स्थापना, तत्त्वचर्चा और उपदेश करते हुए बिताए और संवत् १५९६ में शरीर त्यागा।

सिद्धान्त—नानक जी ने मुख्य रूप से कबीर जी के मत का अनुसरण किया। इनके समय पंजाब में मुसलमानों के आधिपत्य और अधिक संपर्क के कारण उनके एकेश्वरवाद का प्रभाव बढ़ रहा था। नानक जी ने एकेश्वरवाद को अपने उपदेशों में प्रधानता दी। हिन्दुओं में जो रूढ़ियां और कुसंस्कार घर किये हुए थे उनको दूर करके सत्य का उपदेश करना और एक ईश्वर की आडम्बरहीन, सरल उपासनापद्धति का प्रचार करना नानक जी का उद्देश्य था। एक ईश्वर की उपासना के प्रचार से यह हिन्दू-मुसलमानों के विरोध को दूर करना चाहते थे। किसी भी संप्रदाय का जीवन और उसकी शक्ति उसके ऊँचे दार्शनिक सिद्धान्तों पर उतनी अवलम्बित नहीं होती जितनी कि उसके उपदेशों की सरलता, शक्यता, उपयोगिता तथा उसके भक्ति-भाव और सचाई पर होती है। नानक जी के द्वारा प्रवर्तित सिक्ख-संप्रदाय में ये सब बातें पाई जाती हैं। संक्षेप में सिक्ख-संप्रदाय का स्वरूप यह है:—सिक्ख-संप्रदाय एक ईश्वर की भक्ति सिखाता है, जो सर्वशक्तिमान् कर्ता, अकाल, अनादि, अनन्त है। हम सभी उसी एक पिता की संतान हैं। उसमें श्रद्धा और भक्ति से परमानन्द प्राप्त होता है तथा उसके बच्चों—संपूर्ण मनुष्यों—की सेवा करना ही उसकी सच्ची सेवा और उससे एकता प्राप्त करने का साधन है। इस प्रकार भक्ति और सेवा ये दो महान् आदर्श सिक्ख-संप्रदाय ने हिन्दुओं के सामने रखे थे, जिनके लिये वर्तमान में भी सिक्ख लोग प्रसिद्ध हैं।

कविता—नानक जी अधिक पढ़े लिखे न थे, परन्तु भक्तिभाव के आवेश में यह जो भजन गाया करते थे वे सादे होने पर भी कवित्वपूर्ण तथा हृदयस्पर्शी होते थे। उनका संग्रह संवत् १६६१ में ग्रंथसाहब

में किया गया। ये भजन अधिकतर व्रजभाषा में हैं, कुछ पंजाबी में भी हैं। कहीं कहीं खड़ी बोली का भी प्रयोग हुआ है, जिसमें पंजाबी के शब्द मिले हैं। भक्ति और विनय के सरल भाव सरल भाषा में व्यक्त किये गये हैं। कबीर के समान रूपकों या अतिशयोक्तियों के सहारे लोगों पर प्रभाव डालने का प्रयत्न इन्होंने नहीं किया और यह इनकी सरल और अहंभावशून्य प्रकृति के अनुकूल ही है। भगवद्‌गुणकीर्तन, नाममहिमा, भक्ति, सेवाभाव, आडम्बरत्याग, संसार की अनित्यता, सदुपदेश आदि इनकी कविता के विषय हैं। इनकी कविता निर्मल कुल्या के समान नियमित और शान्त गति से बहती है। इसमें कल्पना की तीव्रता और अहंभाव का उन्माद नहीं है। संक्षेप में इनकी कविता इनकी प्रकृति का पूर्ण प्रतिबिम्ब है।

प्रकृत—आगे दिए गए दोहों और भजनों से नानक जी की कविता का सरल, शान्त सौन्दर्य भली भांति दृष्टिगोचर हो जायगा। पहले तीन दोहों में भगवान की व्यापकता और महत्ता सुन्दर ढंग से प्रकट की गई है। आठवें दोहे में आत्म-समर्पण का भाव सहेतुक व्यक्त किया गया है। दसवें दोहे में रबाब की तार के टूटने पर उसके न बजने से वियोग का भाव सजीव कर दिया है। भजनों में भावों की स्वाभाविकता तथा सुन्दरता दर्शनीय है।

दोहे

आपै गुन आपै कथै आपै सुनि बीचारु।
आपै रतन परखि तूं आपै मोलु अपारु॥ १॥
आपै हीरा निर्मला आपै रंग मजीठ।
आपै मोती ऊजला आपै भगत बसीठ॥ २॥
आपै सागर बोहिता आपै पारु अपारु।
साँची बाट सुजान तू शब्द लघावनहारु॥ ३॥
साचौ मान महत्त तू आपै देवनहारु।
ज्यों भावै त्यों राख तू (हरि) नाम मिलै आचारु॥ ४॥
नानक गुरमुख पाइये हरिसों प्रीत पिआर।
हरि बिन किन सुख पाइया देखहु मन बीचार॥ ५॥

हरि पढ़ना हरि बूझना हरिसों रहहु पिआर।
हरि जपिये हरि ध्याइये हरि का नाम अधार ॥ ६ ॥
मन जूठै तन जूठ है जिह्वा जूठी होय।
मुख झूठे झुठ बोलना क्यों करि सूचा होय ॥ ७ ॥
जो दीसै सो चालही किसको मीत करेव।
जीउ समर्पों आपना तन मन आगे देव ॥ ८ ॥
धंदा धावत रहि गये मन महिं सबद अनंद।
दुरजन ते साजन भये भेटे गुर गोबिंद ॥ ९ ॥
टूटी तंत रबाब की बाजै नहीं बिजोगि।
बीछुड़िआ मेलै प्रभू नानक कर संजोगि ॥ १० ॥
मन की दुबिधा ना मिटै मुकति कहाँ ते होइ।
कउड़ी बदले नानका जनम चल्या नर खोइ ॥ ११ ॥
गुन गोबिंद गायो नहीं, जनम अकारथ कीन।
"नानक" भजु रे हरि मना, जेहि विधि जल को मीन ॥१२॥
विषयन सों काहे रँच्यो, निमिष न होय उदास।
कहि नानक भजु हरि मना, परै न जम की फाँस ॥ १३ ॥

(१)

साधो मन का मान तिआगो।
काम क्रोध संगति दुर्जन की, ताते अहनिस भागो ॥
सुख दुख दोनों सम करि जानै, और मान अपमाना।
हर्ष शोक ते रहै अतीता, तिन जगतत्त पिछाना ॥
अस्तुति निन्दा दोउ तिआगै, खोजै पद निरबाना।
जन नानक यह खेल कठिन है, किनहूँ गुरमुख जाना ॥

(२)

काहे रे बन खोजन जाई।
सर्व-निवासी सदा अलेपा, तोही संग समाई ॥
पुष्प मध्य ज्यों बास बसत है, मुकर माहिं जस छाई।
तैसे ही हरि बसै निरंतर, घट ही खोजौ भाई ॥

बाहर भीतर एकै जानौ, यह गुर ज्ञान बताई।
जन नानक बिन आपा चीन्है, मिटै न भ्रम की काई॥

(३)

सब कछु जीवत को ब्यौहार।
मात पिता भाई सुत बांधव, अरु पुन गृह की नार॥
तन तें प्रान होत जब न्यारे, टेरत प्रेत पुकार।
आध घरी कोऊ नहीं राखै, घर तें देत निकार॥
मृगतृस्ना ज्यों जग रचना यह, देखो हृदै विचार।
कहु नानक भज राम नाम नित, जाते हो उद्धार॥

(४)

मन की मनही माहिं रही।
ना हरि भजे न तीरथ सेये, चोटी काल गही॥
दारा मीत पूत रथ संपति, धन जन पूर्न मही।
और सकल मिथ्या यह जानो, भजना राम सही॥
फिरत फिरत बहुते जुग हारयो, मानस देह लही।
नानक कहत मिलन की बिरियाँ, सुमिरत कहा नहीं॥

(५)

जो नर दुख में दुख नहिं मानै।
सुख सनेह अरु भय नहिं जाके, कंचन माटी जानै॥
नहिं निन्दा नहिं अस्तुति जाके, लोभ मोह अभिमाना।
हर्ष शोक तें रहे निआरो, नाहिं मान अपमाना॥
आसा मनसा सकल त्यागिकै, जग ते रहै निरासा।
काम क्रोध जेहि परसैं नाहिन, तेहि घट ब्रह्म निवासा॥
गुरु किरपा जेहि नर पै कीन्ही, तिन यह जुगत पिछानी।
नानक लीन भयो गोबिंदसों, ज्यों पानी सँग पानी॥

(६)

बिसर गई सब तात पराई, जब से साधू संगत पाई॥
नहिं कोई बैरी नहीं बेगाना, सकल संग हमरो बनी आई॥

जो प्रभु कीन्ह सो भल करि मानौं, यह सुमती साधु से पाई ॥
सब में रम रहा प्रभु एकाकी, पेख पेख नानक बिगसाई ॥

मलिक मुहम्मद जायसी

परिचय—मलिक मुहम्मद जायसी हिन्दी के प्रेममार्गी (सूफी) कवियों में सर्वश्रेष्ठ हैं। यह अवध प्रन्त के जायस क़सबे में रहते थे और प्रसिद्ध सूफी फकीर शेख मोहिदी (मुहीउद्दीन) के शिष्य थे। वह स्वयं भी एक सिद्ध फकीर थे। अमेठी के राजा इनका बहुत सम्मान करते थे। कहते हैं, इन्हीं की दुआ से उनको पुत्ररत्न प्राप्त हुआ था। बाद को यह राजा के अनुरोध से अमेठी में ही रहने लगे और वहीं शरीर छोड़ा। अमेठी के कोट के सामने इनकी क़ब्र अब तक विद्यमान है। इन्होंने अपने प्रसिद्ध काव्य पद्मावत को शेरशाह सूर के समय संवत् १५९७ के लगभग रचा था।

सिद्धान्त—जायसी सूफी सिद्धान्त के मानने वाले थे। सूफी सिद्धान्त में प्रेमतत्त्व की ही प्रधानता है। जीव प्रेम के द्वारा ही ईश्वर को प्राप्त कर सकता है। यह उदार हृदय के व्यक्ति थे। मुसलमान होते हुए भी इन्होंने पण्डितों और साधु संन्यासियों की संगति से वेद; पुराण आदि का सार तथा हिन्दू धर्म का स्वरूप भली भाँति जान लिया था। यह हिन्दू-मुसलमानों की पारस्परिक कटुता को पसन्द नहीं करते थे। इसलिये इन्होंने जाति-पाँति की सीमाओं से परे रहने वाले पावन प्रेम की निर्मल धारा बहाकर दोनों जातियों की वैराग्नि को शान्त करने का स्तुत्य प्रयत्न किया। कबीर झाड़ फटकार द्वारा जिस उद्योग में सफल न हो सके उसी में प्रेम के द्वारा मनुष्य के प्रति होने वाले स्वाभाविक रागात्मक सम्बन्ध और हृदयसात्म्य को दृष्टिगोचर करा कर जायसी बहुत कुछ सफल हुए।

कविता—जायसी की कविता उच्च कोटि की है। इसमें भावों की उच्चता, सरसता, हृदयग्राहिता, कल्पना की विशदता, अलङ्कारों का चमत्कार; वर्णन का निर्बाध प्रवाह और शैली की उत्कृष्टता दर्शनीय है। कविता की भाषा बोल-चाल की अवधी है; जिसमें स्थान स्थान पर मुहावरों

और लोकोक्तियों की छटा देखने में आती है। जायसी की दो कृतियाँ उपलब्ध होती हैं—पद्मावत और अखरावट। अखरावट में वर्णमाला के एक एक अक्षर को लेकर ईश्वर, जीव, सृष्टि आदि के विषय में सिद्धान्त-सम्बन्धी सुन्दर चौपाइयां कही हैं। पद्मावत एक प्रबन्ध-काव्य है। इसकी रचना संस्कृत के प्रबन्ध-काव्यों के समान सर्ग विभाग से न होकर फारसी की मसनवी-पद्धति पर दोहे-चौपाइयों में हुई है, परन्तु वर्णन सभी भारतीय परम्परा के अनुसार हैं। इसके पढ़ने से जायसी के हृदय की कोमलता, भावप्रवणता तथा उसमें भरी हुई 'प्रेम की पीरा' की तीव्रता का अनुभव स्पष्ट रूप से हो जाता है। इसमें सिंहलद्वीप की राजकुमारी पद्मावती और चित्तौड़ के राणा रत्नसेन की लौकिक प्रेमगाथा के बहाने अलौकिक प्रेम की अभिव्यञ्जना बड़े ही मनोहर ढंग से की गई है। इसमें इतिहास और कल्पना दोनों का योग है। कथा एक उपलक्ष्य है और लक्ष्य है ईश्वर और उसकी समस्त सृष्टि। इसीलिये जायसी के वर्णन इतने व्यापक हैं। पद्मावती के सौन्दर्य का वर्णन उस अनन्त सौन्दर्य का वर्णन बन गया है, जिसके विरह में समस्त सृष्टि व्याकुल है। विरह में पद्मावती नहीं रोती, समस्त सृष्टि रोती है। मिलन में रत्नसेन को उल्लास नहीं होता, समस्त विश्व को होता है।

प्रकृत—आगे पद्मावत में से दो तीन अंश उद्धृत किये गये हैं, जिनसे जायसी की कविता की शैली, प्रवाह, माधुर्य और भावपूर्णता का परिचय मिल जायगा।

स्तुति

सवँरउँ आदि एक करतारू। जेहि जिउ दीन्ह कीन्ह संसारू॥
कीन्हेसि प्रथम जोति परगासू। कीन्हेसि तेहि परबत कबिलासू॥
कीन्हेसि अगिनि पवन जल खेहा। कीन्हेसि बहुतइ रंग उरेहा॥
कीन्हेसि धरती सरग पतारू। कीन्हेसि बरन बरन अउतारू॥
कीन्हेसि सपत दीप ब्रह्मंडा। कीन्हेसि भुवन चउदहउ खंडा॥
कीन्हेसि दिन दिनिअर ससि राती। कीन्हेसि नखत तराइन पाँती॥
कीन्हेसि सीउ धूप अउ छाँहा। कीन्हेसि मेघ बीजु तेहि माँहा॥

कीन्ह सबइ अस जाकर दोसर छाज न काहि।
पहिलइ तेइ कर नाउँ लेइ कथा करउँ अउगाहि ॥
कीन्हेसि नदी नार अउ झरना। कीन्हेसि मगरमच्छ बहु बरना ॥
कीन्हेसि सीप मोति तेहि भरे। कीन्हेसि बहुतइ नग निरमरे ॥
कीन्हेसि बन-खँड अउ जरि मूरि। कीन्हेसि तरिवर तार खजूरी ॥
कीन्हेसि बरन सेत अउ सामा। कीन्हेसि नींद भूख बिसरामा ॥
कीन्हेसि पान फूल रस भोगू। कीन्हेसि बहु ओखद बहु रोगू ॥
निमिख लाग करत ओहि सबहि कीन्ह पल एक।
गगन अंतरिख राखा बाजु खंभ बिनु टेक ॥
धनपति उहइ जेहि क संसारू। सबहि देइ नित घटि न भँडारू ॥
जावँत जगत हसति अउ चाँटा। सब कहँ भुगुति रात दिन बाँटा ॥
ता करि दिसिटि सबहि उपराहीं। मितर सतरु कोइ बिसरइ नाहीं ॥
पंखी पतँग न बिसरइ कोई। परगट गुपुत जहाँ लगि होई ॥
भोग भुगुति बहु भाँति उपाई। सबहि खिआवइ आपु न खाई ॥
सबहि आस ता करि हर साँसा। ओहि न काहू कइ आस निरासा ॥
जुग जुग देत घटा नहीं उभइ हाथ तस कीन्ह।
अउह जो दीन्ह जगत महँ सो सब ताकर दीन्ह ॥
जीउ नाहिं पइ जिअई गोसाईं। कर नाहीं पइ करइ सबाईं ॥
जीभ नाहिं पइ सब किछु बोला। तन नाहीं जो डोलाउ सो डोला ॥
स्रवन नाहिं पइ सब किछु देखा। कवन भाँति अस जाइ बिसेखा ॥
ना कोइ होइ हइ ओहि के रूपा। ना ओहि अस कोइ आहि अनूपा ॥
ना ओहि ठाउँ न ओहि बिनु ठाऊँ। रूप रेख बिनु निरमर नाऊँ ॥
ना वह मिला न बेहरा अइस रहा भरपूरि।
दिसिटिवंत कहँ नीअरे अंध मुरुख कहँ दूरि ॥

सर-वर्णन

मान-सरोदक देखे काहा। भरा समुद अस अति अउगाहा ॥
पानि मोति असि निरमर तासू। अंम्रित आनि कपूर सुबासू ॥
लंक-दीप कइ सिला अनाई। बाँधा सरवर घाट बनाई ॥

खँड खँड सीढ़ी भईं गरेरी । उतरहिं चढ़हिं लोग चहुँ फेरी ॥
फूले कवँल रहे होइ राते । सहस सहस पखुरिहु कईं छाते ॥
उलथहिं सीप मोति उतराहीं । चुगहिं हंस अउ केलि कराहीं ॥
कनक पंख पहरहिं अति लोने । जानउँ चितर कीन्ह गढ़ि सोने ॥
ऊपर पाल चहूँ दिसा अंब्रित कर सब रूख ।
देखि रूप सरवर कर गइ पिआस अउ भूख ॥
ताल तलाउ सो बरनि न जाहीं । सूझहि वार पार तेहिं नाहीं ॥
फूले कुमुद केति उँजिआरे । जानउँ गये गगन महँ तारे ॥
उतरहिं मेघ चढ़हिं लेइ पानी । चमकहिं मंछ बीजु कइ बानी ॥
पइरहिं पंख सो संगहि संगा । सेत पीत राते सब रंगा ॥
नग अमोल तिन्ह तालहिं दिनहिं बरहिं जस दीप ।
जो मरजीआ होइ तहँ सो पावइ वह सीप ॥

उच्च अभिलाषा

पुरुख हि चाहिअ ऊँच हिआऊ । दिन दिन ऊँचइ राखइ पाऊ ॥
सदा ऊँच पइ सेइअ बारू । ऊँचइ सउँ कीजिअ बेवहारू ॥
ऊँचइ चढ़इ ऊँच खँड सूझा । ऊँचइ पास ऊँच मति बूझा ॥
ऊँचइ संग सँगति निति कीजिअ । ऊँचइ लाइ जीउ पुनि दीजिअ ॥
दिन दिन ऊँच सो होइ जेहि ऊँचइ पर चाउ ।
ऊँच चढ़त जउ खसि परइ ऊँच न छाँडिउ काउ ॥

गर्व

राओन गरब बिरोधा रामू । उहई गरब भएउ सँगरामू ॥
तेहि राओन अस को बरिबंडा । जेहि दस सीस बीस भुजदंडा ॥
सूरज जेहि कइ तपइ रसोई । बइसुंदर निति धोती धोई ॥
सूक सउँटिआ ससि मसिआरा । पउनु करइ निति बार बोहारा ॥
मीचु लाइ कइ पाटी बाँधी । रहा न ओ सउँ दासरि काँधा ॥
जो अस बजर टरा नहिं टारा । सोउ मुआ दोउ तपसिन्ह मारा ॥
नाती पूत कोटि दस अहा । रोअनिहार न एकउ रहा ॥

ओछा जानि कइ काहुहो जनि कोइ गरब करेइ।
ओछे पारइँ दइउ हइ जोत पतर सो देइ॥

गोस्वामी तुलसीदास

परिचय—गोस्वामी तुलसीदास जी हिन्दी के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं। इनका जन्म संवत् १५५४ में और स्वर्गवास संवत् १६८० में हुआ। इनके पिता का नाम आत्मराम दूबे और माता का नाम हुलसी था। यह संयुक्त-प्रान्त के बाँदा जिले के राजापुर गाँव के निवासी, पराशरगोत्री सरयूपारीण ब्राह्मण थे। कहते हैं, अभुक्त मूल नक्षत्र में पैदा होने के कारण माता पिता ने अपने अनिष्ट की आशङ्का से इन्हें त्याग दिया था। किसी प्रकार शैशव कटा। कुछ बड़े होने पर निराश्रय इधर उधर भटकने लगे। अन्त में बाबा नरहरिदास ने इनको आश्रय दिया और शिक्षा दीक्षा भी दी। इस प्रकार नरहरिदास जी इनके प्रथम गुरु हुए। उनसे यह रामायण की कथा सुना करते थे। यहीं से इनके हृदय में रामभक्ति का बीजारोपण हुआ। यह नरहरिदास जी के साथ काशी में आ गये और स्वामी रामानन्द जी के आश्रम में रहने लगे। वहीं इन्होंने परम विद्वान् महात्मा शेषसनातन से वेद, वेदाङ्ग, दर्शन, इतिहास, पुराण आदि सर्वशास्त्रों में प्रवीणता प्राप्त की।

१५ वर्ष अध्ययन करने के अनन्तर गोस्वामी जी फिर अपने गांव राजापुर में लौटे। यथासमय एक भारद्वाजगोत्रीय ब्राह्मण-कन्या से इनका विवाह हो गया। भावुक होने के कारण यह पत्नी पर इतने अनुरक्त हुए कि उसके मायके चले जाने पर मार्ग में आने वाली भयङ्कर नदी को तैर कर वहीं पहुँच गये। यह देख पत्नी ने लज्जित और खिन्न होकर इनसे कहा—

"लाज न आवत आपको दौरे आएहु साथ।
धिक धिक ऐसे प्रेम को कहा कहौं मैं नाथ॥
अस्थि चर्म-मय देह मम ता महँ ऐसी प्रीति।
तैसी जौं श्रीराम महँ होति न तौ भवतीति॥"

ये वाक्य गोस्वामी जी के हृदय में चुभे और इनकी आँखें खुल गईं; विरक्त होकर घर छोड़ दिया; साधु हो गए; और अनेक भूभागों तथा तीर्थों

की विस्तृत यात्रा की, जिसकी सीमा उत्तर में मानसरोवर और दक्षिण में सेतुबन्ध रामेश्वर थी। इस यात्रा में इन्हें महात्माओं के सत्सङ्ग का लाभ प्राप्त हुआ और नाना देशों के आचार-व्यवहार के अध्ययन और प्रकृति के पर्यवेक्षण से इनका अनुभव पुष्ट हुआ। चित्रकूट की रमणीय भूमि इन्हें अधिक भाती थी और काशी, अयोध्या, प्रयाग इनके स्थायी निवास थे, जहां रह कर यह ग्रंथ रचना करते थे। इन्होंने मथुरा, वृन्दावन आदि कृष्ण-तीर्थों की भी यात्रा की और 'कृष्णगीतावली' संभवतः इन्हीं स्थानों में रची गई थी। कहते हैं, संवत् १६१६ में जब यह चित्रकूट में थे तब सूरदास जी इनसे मिलने आए थे और खानखाना रहीम तथा केशवदास की भी इनसे भेंट हुई थी। संवत् १६२१ में काशी में आकर इन्होंने अपने सुप्रसिद्ध प्रबन्ध-काव्य 'रामचरितमानस' की रचना आरम्भ की और लगभग अढ़ाई वर्ष में उसे समाप्त किया। 'रामचरितमानस' में राम चरित के चित्रण द्वारा लोक-धर्म की प्रतिष्ठा करके गोस्वामी जी ने मानवसमाज के प्रति अपने कर्तव्य का पालन किया और अब निश्चिन्त हो आत्मोद्धार की ओर प्रवृत्त हुए। अपना जीवन श्रीराम के चरणों में अर्पित कर साधना-क्षेत्र में अग्रसर हुए। इस समय की उत्कृष्ट कृति 'विनयपत्रिका' है।

सिद्धान्त—गोस्वामी जी स्वामी रामानन्द द्वारा प्रवर्तित रामभक्ति परम्परा के अनुसार राम को दास्यभाव से भजते थे। रामभक्ति का परमोज्ज्वल प्रकाश इन्होंने चारों ओर फैलाया। इनकी दृष्टि उदार थी। यह उस समय हिन्दू-समाज में फैले हुए कुसंस्कारों और शैव, वैष्णव आदि भिन्न २ संप्रदायों के परस्परविरोधी विचारों को दूर कर बिखरती हुई हिन्दू जाति को एकता के सूत्र में बांधना चाहते थे। 'विप्र निरच्छर वृषलीस्वामी' होते जा रहे थे। जब किसी के जी में आया तभी, 'मूँड मुँडाय भये संन्यासी'। कोई मर्यादा नहीं थी। 'नृप पापपरायन' होते जा रहे थे; न्याय और धर्म के भावों में शिथिलता आ रही थी; हिन्दू धर्म की आधारभूत वर्णाश्रम-व्यवस्था मिटती जा रही थी; लोगों के पारस्परिक सम्बन्धों में वैपरीत्य और कटुता आ रही थी; और लोकसंग्रह का भाव उड़ता जा रहा था। ऐसी अवस्था में तुलसीदास जी ने अपनी सूक्ष्मदर्शिनी बुद्धि और सर्वतोमुखी

प्रतिभा द्वारा 'रामचरितमानस' का सृजन कर धर्मनीति, समाजनीति और राजनीति का समुज्ज्वल आदर्श लोगों के सामने रक्खा। कबीर, सूर आदि सन्त और भक्त लोकपक्ष से सर्वथा उदासीन थे, जनसमाज के बनने-बिगड़ने से उन्हें कोई प्रयोजन नहीं था। तुलसीदास जी ने भक्ति और कर्म का समन्वय करके लोकपक्ष की रक्षा की। यह भक्त, विद्वान्, दार्शनिक कवि, सुधारक क्या नहीं थे।

कविता—कविता की दृष्टि से गोस्वामी जी अपनी उपमा आप ही हैं। साहित्यशास्त्र के अनुसार इनकी कविता सर्वाङ्गपूर्ण है। इसमें रसपरिपाक, अलङ्कार-विन्यास, छन्द-सौन्दर्य, उक्ति-वैचित्र्य, अभिनव-कल्पना, भाव भाषा-सामञ्जस्य वर्णन-वैचित्र्य, सरलता, लालित्य, व्यञ्जकता, नाटकीय सुन्दरता आदि गुण मानो अपना २ उत्कर्ष दिखाने के लिये होड़ लगाए बैठे हैं। छप्पय, दोहा, चौपाई, गीत, कवित्त आदि सभी पद्धतियों, और अवधी तथा व्रजभाषा—इन दोनों काव्य भाषाओं पर गोस्वामी जी का पूर्ण आधिपत्य है। इन्होंने संस्कृत की कोमल-कान्त पदावली के मिश्रण से जायसी की ग्रामीण अवधी में विशिष्ट साहित्यिक सौन्दर्य पैदा कर दिया है। विशेषकर, भारतीय समाज जिन बातों को चाहता है, वही बातें इन्होंने सरल सुन्दर ढंग से कही हैं। मानो इनकी कविता में भारत का हृदय स्पन्दन कर रहा है। हिन्दी के प्राचीन कवियों में एकमात्र यही भारत के प्रतिनिधि कवि हैं। यही कारण है कि इनकी दरिद्रकुटीर से लेकर राजप्रासाद तक करोड़ों कण्ठों में गूंज रही है, साधारण जनता के लिये धर्मशास्त्र और नीतिशास्त्र का काम दे रही है। इतनी व्यापकता और सर्वप्रियता का सौभाग्य अन्य किसी भी कवि की कविता को प्राप्त नहीं है।

प्रकृत—यद्यपि गोस्वामी जी की रामचरितमानस, रामगीतावली, कृष्णगीतावली, कवितावली, रामसतसई, बरवैरामायण, पार्वतीमङ्गल आदि बारह रचनाएँ प्रसिद्ध हैं तथापि यहां सर्वप्रिय 'रामचरितमानस' में से ही कुछ अंश उद्धृत किये गये हैं, जिनसे गोस्वामी जी की कविता के उल्लिखित गुणों का परिचय मिल जायगा। वन्दना में विश्वात्मभाव की अभिव्यक्ति के साथ परिहास का भी मधुर मिश्रण है। संवादों में नाटकीय

छटा के साथ प्रथम संवाद में लक्ष्मण का अद्भुत प्रेम, अनन्यता और आत्म समर्पण, द्वितीय में सुमित्रा की उदारहृदयता और त्याग, तृतीय में केवट की भक्ति, सरलता और विनोद-शीलता तथा चतुर्थ में अङ्गद का परिहास और रावण का क्रोध कविता की कमनीयता को चार चाँद लगा रहे हैं।

बन्दना।

मूक होइ बाचाल पंगु चढ़इ गिरिबर गहन।
जासु कृपा सो दयाल द्रवउ सकल कलिमल दहन॥
नील सरोरुह स्याम तरुन अरुन बारिज नयन।
करउ सो मम उर धाम सदा छीरसागर सयन॥
कुंद इंदु सम देह उमारमन करुना अयन।
जाहि दीन पर नेह करउ कृपा मर्दन मयन॥
बंदउँ गुरु पद कंज कृपासिंधु नररूप हरि।
महामोह तम पुंज जासु बचन रबि कर निकर॥

बंदउँ प्रथम महीसुर चरना। मोह जनित संसय सब हरना॥
सुजन समाज सकल गुनखानी। करउँ प्रनाम सप्रेम सुबानी॥
साधु चरित सुभ सरिस कपासू। निरस बिसद गुनमय फल जासू॥
जो सहि दुख परछिद्र दुरावा। बंदनीय जेहिं जग जस पावा॥
मति कीरति गति भूति भलाई। जब जेहिं जतन जहाँ जेहिं पाई॥
सो जानब सतसंग प्रभाऊ। लोकहुँ बेद न आन उपाऊ॥
बिनु सतसंग बिबेक न होई। रामकृपा बिनु सुलभ न सोई॥
सतसंगत मुद मंगल मूला। सोइ फल सिधि सब साधन फूला॥

बन्दउँ संत समान चित हित अनहित नहिं कोइ।
अंजलिगत सुभ सुमन जिमि सम सुगंध कर दोइ॥

बहुरि बंदि खलगन सति भाएँ। जे बिनु काज दाहिनेहुँ बाएँ॥
परहित हानि लाभ जिन्ह केरें। उजरें हरष बिषाद बसेरें॥
हरि हर जस राकेस राहु से। पर अकाज भट सहसबाहु से॥
बचन बज्र जेहि सदा पिआरा। सहस नयन परदोष निहारा॥
पर अकाजु लगि तनु परिहरहीं। जिमि हिम उपल कृषी दलि गरहीं॥

बंदउँ खल जस सेष सरोषा। सहस बदन बरनइ परदोषा ॥
बंदउँ सन्त असज्जन चरना। दुखप्रद उभय बीच कछु बरना ॥
बिछुरत एक प्रान हरि लेहीं। मिलत एक दुख दारुन देहीं ॥
उपजहिं एक संग जग माहीं। जलज जोंक जिमि गुन बिलगाहीं
सुधा सुरा सम साधु असाधू। जनक एक जग जलधि अगाधू ॥

भलो भलाइहि पै लहइ लहइ निचाइहि नीचु।
सुधा सराहिअ अमरताँ गरल सराहिअ नीचु ॥
जड़ चेतन गुनदोषमय बिस्व कीन्ह करतार।
संत हंस गुन गहहिं पय परिहरि बारि बिकार ॥

किएहुँ कुबेषु साधु सनमानू। जिमि जग जामवंत हनुमानू ॥
हानि कुसंग सुसंगति लाहू। लोकहुँ बेद बिदित सब काहू ॥
गगन चढ़इ रज पवनप्रसंगा। कीचहि मिलइ नीच जल संगा ॥
साधु असाधु सदन सुक सारीं। सुमिरहिं राम देहिं गनि गारीं ॥
धूम कुसंगति कारिख होई। लिखिअ पुरान मंजु मसि सोई ॥
सोइ जल अनल अनिल संघाता। होइ जलद जग जीवन दाता ॥

ग्रह भेषज जल पवन पट पाइ कुजोग सुजोग।
होहि कुबस्तु सुबस्तु जग लखहिं सुलच्छन लोग ॥
सम प्रकास तम पाख दुहुँ नाम भेद बिधि कीन्ह।
ससि सोषक पोषक समुझि जग जस अपजस दीन्ह ॥
जड़ चेतन जग जीव जत सकल राममय जानि।
बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥

आकर चारि लाख चौरासी। जाति जीव जल थल नभ बासी ॥
सीय राममय सब जग जानी। करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥

राम-लक्ष्मण संवाद

समाचार जब लछिमन पाए। ब्याकुल बिलख बदन उठि धाए ॥
कंप पुलक तन नयन सनीरा। गहे चरन अतिप्रेम अधीरा ॥
कहि न सकत कछु चितवत ठाढ़े। मीनु दीनु जनु जल तें काढ़े ॥
सोचु हृदयँ बिधि का होनिहारा। सबु सुखु सुकृतु सिरान हमारा ॥

मो कहुँ काह कहब रघुनाथा । रखिहहिं भवन कि लेहहिं साथा ॥
राम बिलोकि बंधु कर जोरें । देह गेह सब सन तृनु तोरें ॥
बोले बचनु राम नयनागर । सील सनेह सरल सुख सागर ॥
तात प्रेम बस जनि कदराहू । समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू ॥
मातु पिता गुरु स्वामि सिख सिर धरि करहिं सुभायँ ।
लहेउ लाभु तिन्ह जन्म कर नतरु जनमु जग जायँ ॥
अस जियँ जानि सुनहु सिख भाई। करहु मातु पितु पद सेवकाई ॥
भवन भरतु रिपूसूदनु नाहीं । राउ वृद्ध मम दुखु मन माहीं ॥
मैं बन जाऊँ तुम्हहि लेइ साथा । होइ सबहि बिधि अवध अनाथा ॥
गुरु पितु मातु प्रजा परिवारू । सब कहुँ परइ दुसह दुखभारू ॥
रहहु करहु सब कर परितोषू । नतरु तात होइहि बड़ दोषू ॥
जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी । सो नृप अवसि नरक अधिकारी ॥
रहहु तात असि नीति बिचारी । सुनत लखनु भए ब्याकुल भारी ॥
सिअरें बचन सूखि गये कैसें । बरसत तुहिन तामरसु जैसें ॥
उतरु न आवत प्रेम बस गहे चरन अकुलाइ ।
नाथ दास मैं स्वामि तुम्ह तजहु त काह बसाइ ॥
दीन्ह मोहि सिख नीकि गोसाईं । लागि अगम अपनी कदराईं ॥
नर-बर धीर धरम धुर धारी । निगम नीति कहुँ ते अधिकारी ॥
मैं सिसु प्रभुसनेहँ प्रतिपाला । मंदरु मेरु कि लेहिं मराला ॥
गुरु पितुमातु न जानउँ काहू । कहउँ सुभाउ नाथ पतिआहू ॥
जहँ लगि जगत सनेह सगाई । प्रीति प्रतीति निगम निजु गाई ॥
मोरें सबइ एक तुम्ह स्वामी । दीनबंधु उर अंतरजामी ॥
धरम नीति उपदेसिअ ताही । कीरति भूति सुगति प्रिय जाही ॥
मन क्रम बचन चरन रत होई । कृपासिन्धु परिहरिअ कि सोई ॥
करुनासिंधु सुबंधु के सुनि मृदु बचन बिनीत ।
समुझाए उर लाइ प्रभु जानि सनेहँ सभीत ॥
माँगहु बिदा मातु सन जाई । आवहु बेगि चलहु बन भाई ॥
मुदित भए सुनि रघुबर बानी । भयउ लाभ बड़ गइ बड़ि हानी ॥

हरषित हृदयँ मातु पहिं आए। मनहुँ अंध फिरि लोचन पाए॥
जाइ जननि पग नायउ माथा। मनु रघुनंदन जानकि साथा॥

सुमित्रा-लक्ष्मण-संवाद

पूछे मातु मलिन मन देखी। लखन कही सब कथा बिसेषी॥
गई सहमि सुनि बचन कठोरा। मृगी देखि दव जनु चहुँ ओरा॥
लखन लखेउ भा अनरथ आजू। एहिं सनेह बस करब अकाजू॥
माँगत बिदा समय सकुचाहीं। जाइ संग बिधि कहिहि कि नाहीं॥

समुझि सुमित्रा राम सिय रूप सुसीलु सुभाउ।
नृप सनेह लखि धुनेउ सिरु पापिनि दीन्ह कुदाउ॥

धीरजु धरेउ कुअवसर जानी। सहज सुहृद बोली मृदु बानी॥
तात तुम्हारि मातु बैदेही। पिता रामु सब भाँति सनेही॥
अवध तहाँ जहँ राम निवासू। तहँइँ दिवसु जहँ भानुप्रकासू॥
जौं पै सीय रामु बन जाहीं। अवध तुम्हार काजु कछु नाहीं॥
गुरु पितु मातु बन्धु सुर साईं। सेइअहिं सकल प्रान की नाईं॥
रामु प्रान प्रिय जीवन जी के। स्वारथरहित सखा सबही के॥
पूजनीय प्रिय परम जहाँ तें। सब मानिअहिं राम के नातें॥
अस जियँ जानि संग बन जाहू। लेहु तात जग जीवन लाहू॥

भूरि भाग भाजनु भयहु मोहि समेत बलि जाउँ।
जौं तुम्हरें मन छाड़ि छलु कीन्ह राम पद ठाउँ॥

पुत्रवती जुवती जग सोई। रघुपति भगतु जासु सुतु होई॥
नतरु बाँझ भलि बादि बिआनी। रामबिमुख सुत तें हित जानी॥
तुम्हरेहिं भाग रामु बन जाहीं। दूसर हेतु तात कछु नाहीं॥
सकल सुकृत कर बड़ फल एहू। राम सीय पद सहज सनेहू॥
रागु रोषु इरिषा मदु मोहू। जनि सपनेहुँ इन्ह के बस होहू॥
सकल प्रकार बिकार बिहाई। मन क्रम बचन करेहु सेवकाई॥
तुम्ह कहुँ बन सब भाँति सुपासू। सँग पितु मातु रामु सिय जासू॥
जेहिं न रामु बन लहहिं कलेसू। सुत सोइ करेहु इहइ उपदेसू॥

राम-केवट-संवाद

माँगी नाव न केवटु आना। कहइ तुम्हार मरमु मैं जाना॥
चरन कमल रज कहुँ सबु कहई। मानुष करनि मूरि कछु अहई॥
छुअत सिला भई नारि सुहाई। पाहन तें न काठ कठिनाई॥
तरनिउ मुनि घरिनी होइ जाई। बाट परइ मोरि नाव उड़ाई॥
एहि पतिपालउँ सब परिवारू। नहिं जानउँ कछु अउर कबारू॥
जौं प्रभु पार अवसि गा चहहू। मोहि पद पदुम पखारन कहहू॥

पद कमल धोइ चढ़ाइ नाव न नाथ उतराई चहौं।
मोहि राम राउरि आन दसरथ सपथ सब साची कहौं॥
बरु तीर मारहुँ लखनु पै जब लगि न पाय पखारिहौं।
तब लगि न तुलसीदास नाथ कृपाल पारु उतारिहौं॥

सुनि केवट के बैन प्रेम लपेटे अटपटे।
बिहसे करुनाऐन चितइ जानकी लखन तन॥

कृपासिधु बोले मुसकाई। सोइ करु जेहिं तव नाव न जाई॥
बेगि आनु जल पाय पखारू। होत बिलंबु उतारहु पारू॥
जासु नाम सुमिरन एक बारा। उतरहिं नर भवसिधु अपारा॥
सोइ कृपालु केवटहिं निहोरा। जेहिं जगु किय तिहुँ पगहु ते थोरा॥
पदनख निरखि देवसरि हरषी। सुनि प्रभुवचन मोहँ मति करषी॥
केवट राम रजायसु पावा। पानि कठवता भरि लेइ आवा॥
अति आनंद उमगि अनुरागा। चरन सरोज पखारन लागा॥
बरषि सुमन सुर सकल सिहाहीं। एहि सम पुन्यपुंज कोउ नाहीं॥

पद पखारि जलु पान करि आप सहित परिवार।
पितर पारु करि प्रभुहि पुनि मुदित गयउ लेइ पार॥

उतरि ठाढ़ भए सुरसरि रेता। सीय राम गुह लखन समेता॥
केवट उतरि दंडवत कीन्हा। प्रभुहिं सकुच एहि नहिं कछु दीन्हा॥
पिय हिय की सिय जाननिहारी। मतुमुदरी मन मुदित उतारी॥
कहेउ कृपाल लेहि उतराई। केवट चरन गहे अकुलाई॥
नाथ आजु मैं काह न पावा। मिटे दोष दुख दारिद दावा॥

बहुत काल मैं कीन्हि मजूरी। आजु दीन्ह बिधि बनि भलि भूरी॥
अब कछु नाथ न चाहिअ मोरें। दीनदयाल अनुग्रह तोरें॥
फिरति बार मोहि जो कछु देबा। सो प्रसादु मैं सिर धरि लेबा॥

बहुत कीन्ह प्रभु लखन सियँ नहिं कछु केवट लेइ।
बिदा कीन्ह करुनायतन भगति बिमल बरु देइ॥

अंगद-रावण-संवाद

कह दसकंठ कवन तैं बंदर। मैं रघुबीर दूत दसकंधर॥
मम जनकहि तोहि रही मिताई। तव हित कारन आयउँ भाई॥
उत्तम कुल पुलस्ति कर नाती। सिव बिरंचि पूजेहु बहु भाँती॥
बर पायहु कीन्हेव सब काजा। जीतेहु लोकपाल सब राजा॥
नृप अभिमान मोह बस किंबा। हरि आनिहु सीता जगदम्बा॥
अब सुभ कहा सुनहु तुम्ह मोरा। सब अपराध छमिहि प्रभु तोरा॥
दसन गहहु तृन कंठ कुठारी। परिजन सहित संग निज नारी॥
सादर जनकसुता करि आगें। एहि बिधि चलहु सकलभय त्यागें॥

प्रनतपाल रघुबंसमनि त्राहि त्राहि अब मोहि।
आरत गिरा सुनत प्रभु अभय करेगो तोहि॥

रे कपिपोत बोलु संभारी। मूढ़ न जानेहि मोहि सुरारी॥
कहु निज नाम जनक कर भाई। केहि नातें मानिए मिताई॥
अंगद नाम बालि कर बेटा। तासों कबहुँ भई ही भेटा॥
अंगद बचन सुनत सकुचाना। रहा बालि बानर मैं जाना॥
अंगद तहीं बालि कर बालक। उपजेहु बंस अनल कुलघालक॥
गर्भ न गयहु व्यर्थ तुम्ह आयहु। निज मुख तापस दूत कहायहु॥
अब कहु कुशल बालि कहँ अहई। बिहसि बचन तब अंगद कहई॥
दिन दस गएँ बालि पहिं जाई। बूझेहु कुसल सखा उर लाई॥
राम बिरोध कुसल जसि होई। सो सब तोहि सुनाइहि सोई॥
सुनु सठ भेद होइ मन ताकें। श्रीरघुबीर हृदयँ नहिं जाकें॥

हम कुल-घालक सत्य तुम्ह कुल-पालक दससीस।
अंधउ बधिर न अस कहहिं नयन कान तव बीस॥

सिव बिरंचि सुर मुनि समुदाई । चाहत जासु चरन सेवकाई ॥
तासु दूत होइ हम कुल बोरा । अइसिहुँ मति उर बिहर न तोरा ॥
सुनि कठोर बानी कपि केरी । कहत दसानन नयन तरेरी ॥
खल तव कठिन बचन सब सहऊँ । नीति धर्म मैं जानत अहऊँ ॥
कह कपि धर्मसीलता तोरी । हमहुँ सुनी कृत पर तिय चोरी ॥
देखी नयन दूत रखवारी । बूड़ि न मरहु धर्म ब्रत धारी ॥
कान नाक बिनु भगिनि निहारी । छमा कीन्हि तुम धर्म बिचारी ॥
धर्मसीलता तव जग जागी । पावा दरसु हमहुँ बड़भागी ॥

जनि जल्पसि जड़ जंतु कपि सठ बिलोकु मम बाहु ।
लोकपाल बल बिपुल ससि ग्रसन हेतु सब राहु ॥
पुनि नभ सर मम कर निकर कमलन्हि पर करि बास ।
सोभत भयउ मराल इव संभु सहित कैलास ॥

तुम्हरे कटक माँझ सुनु अंगद । मो सन भिरिहि कवन जोधा बद ॥
तव प्रभु नारि बिरहँ बलहीना । अनुज तासु दुख दुखी मलीना ॥
तुम सुग्रीव कूल द्रुम दोऊ । अनुज हमार भीरु अति सोऊ ॥
जामवंत मंत्री अतिबूढ़ा । सो कि होइ अब समरारूढ़ा ॥
सिल्पिकर्म जानहिं नल नीला । है कपि एक महा बलसीला ॥
आवा प्रथम नगरु जेहिं जारा । सुनत बचन कह बालिकुमारा ॥
सत्य बचन बहु निसिचर नाहा । साँचेहुँ कीस कीन्ह पुरदाहा ॥
रावन नगर अल्प कपि दहई । सुनि अस बचन सत्य को कहई ॥
जो अतिसुभट सराहेहु रावन । सो सुग्रीव केर लघु धावन ॥
चलइ बहुत सो बीर न होई । पठवा खबरि लेन हम सोई ॥

सत्य नगरु करि जारेउ बिनु प्रभु आयसु पाइ ।
फिरि न गयउ सुग्रीव पहिं तेहिं भय रहा लुकाइ ॥
सत्य कहहि दसकंठ सब मोहि न सुनि कछु कोह ।
कोउ न हमारें कटक अस तो सन लरत जो सोह ॥
प्रीति बिरोध समान सन करिअ नीति असि आहि ।
जौं मृगपति बध मेडुकन्हि भल कि कहइ कोउ ताहि ॥

जद्यपि लघुता राम कहुँ तोहि बधें बड़ दोष।
तदपि कठिन दसकंठ सुनु छत्र जाति कर रोष॥
बक्र उक्ति धनु बचन सर हृदय दहेउ रिपु कीस।
प्रतिउत्तर सँड़सिन्ह मनहुँ काढ़त भट दससीस॥
हँसि बोलेउ दसमौलि तब कपि कर बड़ गुण एक।
जो प्रतिपालइ तासु हित करइ उपाय अनेक॥

धन्य कीस जो निज प्रभु काजा। जहँ तहँ नाचइ परिहरि लाजा॥
नाचि कूदि करि लोग रिझाई। पति हित करइ धर्म निपुनाई॥
अंगद स्वामिभक्त तव जाती। प्रभुगुन कस न कहसि एहि भाँति॥
मैं गुनगाहक परम सुजाना। तव कटु रटनि करउँ नहिं काना॥
कह कपि तव गुन गाहकताई। सत्य पवनसुत मोहि सुनाई॥
बन बिधंसि सुत बधि पुर जारा। तदपि न तेहिं कछु कृत अपकारा।
सोइ बिचारि तव प्रकृति सुहाई। दसकंधर मैं कीन्हि ढिठाई॥
देखेउँ आइ जो कछु कपि भाषा। तुम्हरे लाज न रोष न माखा॥
जौं असि मति पितु खाए कीसा। कहि अस बचन हँसा दससीसा॥
पितहि खाइ खातेउँ पुनि तोही। अबहीं समुझि परा कछु मोही॥
बालि बिमल जस भाजन जानी। हतउँ न तोहि अधम अभिमानी॥
कहु रावन रावन जग केते। मैं निज श्रवन सुने सुनु जेते॥
बलिहि जितन एक गयउ पताला। राखेउ बाँधि सिसुन्ह हयसाला॥
खेलहिं बालक मारहिं जाई। दया लागि बलि दीन्ह छोड़ाई॥
एक बहोरि सहसभुज देखा। धाइ धरा जिमि जंतु बिसेषा॥
कौतुक लागि भवन लै आवा। सो पुलस्ति मुनि जाइ छोड़ावा॥

एक कहत मोहि सकुच अति रहा बालि की काँख।
इन्ह महुँ रावन तैं कवन सत्य बदहि तजि माख॥

सुनु सठ सोइ रावन बलसीला। हरगिरि जान जासु भुजलीला॥
जान उमापति जासु सुराई। पूजेउँ जेहि सिर सुमन चढ़ाई॥
सिर सरोज निज करन्हि उतारी। पूजेउँ अमित बार त्रिपुरारी॥
भुजबिक्रम जानहिं दिगपाला। सठ अजहूँ जिनके उर साला॥

जानहिं दिग्गज उर कठिनाई । जब जब भिरउँ जाइ बरिआई ॥
जिन्ह के दसन कराल न फूटे । उर लागत मूलक इव टूटे ॥
जासु चलत डोलति इमि धरनी । चढ़त मत्तगज जिमि लघु तरनी ॥
सोइ रावन जग बिदित प्रतापी । सुनेहि न श्रवण अलीक प्रलापी ॥

तेहि रावन कहँ लघु कहसि नर कर करसि बखान ।
रे कपि बर्बर खर्ब खल अब जाना तव ग्यान ॥

सुनि अंगद सकोप कह बानी । बोलु सँभारि अधम अभिमानी ॥
सहसबाहु भुज गहन अपारा । दहन अनल सम जासु कुठारा ॥
जासु परसु सागर खर धारा । बूड़े नृप अगनित बहु बारा ॥
तासु गर्व जेहि देखत भागा । सो नर क्यों दससीस अभागा ॥
राम मनुज कस रे सठ बंगा । धन्वी कामु नदी पुनि गंगा ॥
पसु सुरधेनु कल्पतरु रूखा । अन्न दान अरु रस पीयूषा ॥
वैनतेय खग अहि सहसानन । चिन्तामनि पुनि उपल दसानन ॥
सुनु मतिमंद लोक बैकुंठा । लाभ कि रघुपति भगति अकुंठा ॥

सेन सहित तव मान मथि बन उजारि पुर जारि ।
कस रे सठ हनुमान कपि गयउ जो तव सुत मारि ॥

सुन रावन परिहरि चतुराई । भजसि न कृपासिन्धु रघुराई ॥
जौं खल भएसि राम कर द्रोही । ब्रह्म रुद्र सक राखि न तोही ॥
मूढ़ बृथा जनि मारसि गाला । राम बयर अस होइहि हाला ॥
तव सिर निकर कपिन्ह के आगें । परिहहिं धरनि राम सर लागें ॥
ते तव सिर कंदुक सम नाना । खेलिहहिं भालु कीस चौगाना ॥
जबहिं समर कोपिहि रघुनायक । छुटिहहिं अतिकराल बहु सायक ॥
तब कि चलिहि अस गाल तुम्हारा । अस बिचारि भजु राम उदारा ॥
सुनत बचन रावन परजरा । जरत महानल जनु घृत परा ॥

कुम्भकरन अस बन्धु मम सुत प्रसिद्ध सक्रारि ।
मोर पराक्रम नहिं सुनेहि जितेउँ चराचर झारि ॥

सठ साखामृग जोरि सहाई । बाँधा सिंधु इहइ प्रभुताई ॥
नाघहिं खग अनेक बारीसा । सूर न होहिं ते सुनु सब कीसा ॥

मम भुज सागर बल जल पूरा। जहँ बूड़े बहु सुर नर सूरा॥
बीस पयोधि अगाध अपारा। को अस बीर जो पाइहि पारा॥
दिगपालन्ह मैं नीर भरावा। भूप सुजस खल मोहि सुनावा॥
जौं पै समर सुभट तव नाथा। पुनि पुनि कहसि जासु गुनगाथा॥
तौ बसीठ पठवत केहि काजा। रिपु सन प्रीति करत नहिं लाजा॥
हरगिरि मथन निरखु मम बाहु। पुनि सठ कपि निज प्रभुहि सराहू॥

सूर कवन रावन सरिस स्वकर काटि जेहिं सीस।
हुने अनल अति हरष बहु बार साखि गौरीस॥

जरत बिलोकेउ जबहिं कपाला। बिधि के लिखे अंक निज भाला॥
नर कें कर आपन बध बाँची। हसेउँ जानि बिधिगिरा असाँची॥
सोउ मन समुझि त्रास नहिं मोरें। लिखा बिरंचि जरठ मति भोरें॥
आन बीर बल सठ मम आगें। पुनि पुनि कहसि लाज पति त्यागें॥
कह अंगद सलज्ज जग माहीं। रावन तोहि समान कोउ नाहीं॥
लाजवंत तब सहज सुभाऊ। निज मुख निज गुन कहसि न काऊ॥
सिर अरु सैल कथा चित रही। ताते बार बीस तैं कही॥
सो भुजबल राखेहु उर घाली। जीतेहु सहसबाहु बलि बाली॥
सुनु मतिमंद देहि अब पूरा। काटें सीस कि होइअ सूरा॥
इन्द्रजालि कहुँ कहिअ न बीरा। काटइ निज कर सकल सरीरा॥

जरहिं पतङ्ग मोह बस भार बहहिं खरबृंद।
तेनहिं सूर कहावहिं समुझि देखु मतिमंद॥

अब जनि बतबढ़ाव खल करही। सुनु मम बचन मान परिहरही॥
दसमुख मैं न बसीठीं आयउँ। अस बिचारि रघुबीर पठायउँ॥
बार बार अस कहइ कृपाला। नहिं गजारि जसु बधें सृगाला॥
मन महुँ समुझि बचन प्रभु केरे। सहेउँ कठोर बचन खल तेरे॥
नाहि त करि मुख भञ्जन तोरा। लै जातेउँ सीतहि बरजोरा॥
जानेउँ तव बल अधम सुरारी। सूनें हरि आनिहि परनारी॥
तैं निसिचरपति गर्व बहूता। मैं रघुपति सेवक कर दूता॥
जौं न राम अपमानहिं डरउँ। तोहि देखत अस कौतुक करउँ॥

तोहि पटकि महि सेन हति चौपट करि तब गाउँ।
तव जुबतिन्ह समेत सठ कनकसुतहिं लै जाउँ॥
जौं अस करौं तदपि न बड़ाई। मुएहि बधें नहिं कछु मनुसाई॥
कौल कामबस कृपिन बिमूढ़ा। अतिदरिद्र अजसी अतिबूढ़ा॥
सदा रोगबस संतत क्रोधी। बिष्नु बिमुख श्रुति संत बिरोधी॥
तनु पोषक निंदक अघखानी। जीवत सव सम चौदह प्रानी॥
अस बिचारि खल बधउँ न तोही। अब जनि रिस उपजावसि मोही॥
सुनि सकोप कह निसिचरनाथा। अधर दसन दसि मीजत हाथा॥
रे कपि अधम मरन अब चहसी। छोटे बदन बात बढ़ि कहसी॥
कटु जल्पसि जड़ कपि बल जाकें। बल प्रताप बुधि तेज न ताकें॥
अगुन अमान जानि तेहि दीन्ह पिता बनवास।
सो दुख अरु जुबती बिरह पुनि निसिदिन मम त्रास॥
जिन्ह के बल कर गर्ब तोहि अइसे मनुज अनेक।
खाहिं निशाचर दिवस निसि मूढ़ समुझु तजि टेक॥
जब तेहि कीन्हि राम कै निंदा। क्रोधवंत तब भयउ कपिंदा॥
हरि हर निंदा सुनइ जो काना। होइ पाप गोघात समाना॥
कट कटान कपिकुंजर भारी। दुहु भुजदंड तमकि महि मारी॥
डोलत धरनि सभासद खसे। चले भाजि भय मारुत ग्रसे॥
गिरत सँभारि उठा दसकंधर। भूतल परे मुकुट अतिसुन्दर॥
कछु तेहिं लै निज सिरन्हि सँवारे। कछु अंगद प्रभु पास पवारे॥
आवत मुकुट देखि कपि भागे। दिनहीं लूक परन बिधि लागे॥
की रावन करि कोप चलाए। कुलिस चारि आवत अति धाए॥
कह प्रभु हँसि जनि हृदय डेराहू। लूक न असनि केतु नहिं राहू॥
ए किरीट दसकंधर केरे। आवत बालितनय के प्रेरे॥
तरकि पवनसुत कर गहे आनि धरे प्रभु पास।
कौतुक देखहिं भालु कपि दिनकर सरिस प्रकास॥
उहाँ सकोप दसानन सब सन कहत रिसाइ।
धरहु कपिहि धरि मारहु सुनि अंगद मुसुकाइ॥

एहि बधि बेगि सुभट सब धावहु । खाहु भालु कपि जहँ जहँ पावहु ॥
मर्कटहीन करहु महि जाई । जिअत धरहु तापस दोउ भाई ॥
पुनि सकोप बोलेउ जुबराजा । गाल बजावत तोहि न लाजा ॥
मरु गर काटि निलज कुलघाती । बल बिलोकि बिहरति नहिं छाती ॥
रे त्रियचोर कुमारग गामी । खल मलरासि मन्दमति कामी ॥
सन्यपात जल्पसि दुर्बादा । भएसि कालबस खल मनुजादा ॥
याको फलु पावहिगो आगें । बानर भालु चपेटन्हि लागें ॥
रामु मनुज बोलत असि बानी । गिरहिं न तव रसना अभिमानी ॥
गिरिहहिं रसना संसय नाहीं । सिरन्हि समेत समर महि माहीं ॥

सो०—सो नर क्यों दसकंध बालि बध्यो जेहिं एक सर ।
बीसहुँ लोचन अंध धिग तव जन्म कुजाति जड़ ॥
तव सोनित कीं प्यास तृषित राम सायक निकर ।
तजउँ तोहि तेहि त्रास कटुजल्पक निसिचर अधम ॥

मैं तव दसन तोरिबे लायक । आयसु मोहि न दीन्ह रघुनायक ॥
असि रिस होत दसउ मुख तोरौं । लंका गहि समुद्र महँ बोरौं ॥
गूलरि फल समान तव लंका । बसहु मध्य तुम्ह जन्तु असंका ॥
मैं बानर फल खात न बारा । आयसु दीन्ह न राम उदारा ॥
जुगुति सुनत रावन मुसुकाई । मूढ़ सिखिहि कहँ बहुत झुठाई ॥
बालि न कबहुँ गाल अस मारा । मिलि तपसिन्ह तैं भएसि लबारा ॥
साँचेहुँ मैं लबार भुजबीहा । जौं न उपारिउँ तव दस जीहा ॥
समुझि रामप्रताप कपि कोपा । सभा माझ पन करि पद रोपा ॥
जौं मम चरन सकसि सठ टारी । फिरहिं रामु सीता मैं हारी ॥
सुनहु सुभट सब कह दससीसा । पद गहि धरनि पछारहु कीसा ॥
इन्द्रजीत आदिक बलवाना । हरषि उठे जहँ तहँ भट नाना ॥
झपटहिं करि बल बिपुल उपाई । पद न टरइ बैठहिं सिरु नाई ॥
पुनि उठि झपटहिं सुर आराती । टरइ न कीस चरन एहि भाँती ॥
पुरुष कुजोगी जिमि उरगारी । मोह बिटप नहिं सकहिं उपारी ॥
कोटिन्ह मेघनाद सम सुभट उठे हरषाइ ।

झपटहिं टरै न कपि चरन पुनि बैठहिं सिर नाइ ॥
भूमि न छाँडत कपि चरन देखत रिपु मद भाग ।
कोटि बिघ्न ते संत कर मन जिमि नीति न त्याग ॥

कपिबल देखि सकल हियँ हारे । उठा आपु कपि कें परचारे ॥
गहत चरन कह बालिकुमारा । मम पद गहें न तोर उबारा ॥
गहसि न राम चरन सठ जाई । सुनत फिरा मन अतिसकुचाई ॥
भयउ तेजहत श्री सब गई । मध्यदिवस जिमि ससि सोहई ।
सिंहासन बैठेउ सिर नाई । मानहुँ संपति सकल गँवाई ॥
जगदातमा प्रानपति रामा । तासु बिमुख किमि लह बिश्रामा ॥
उमा राम कीं भृकुटि बिलासा । होइ बिस्व पुनि पावइ नासा ॥
तृन ते कुलिस कुलिस तृन करई । तासु दूत पन कहु किमि टरई ॥
पुनि कपि कही नीति बिधि नाना । मान न ताहि कालु निअराना ॥
रिपुमद मथि प्रभु सुजसु सुनायो । यह कहि चल्यो बालिनृप जायो ॥
हतौं न खेत खेलाइ खेलाई । तोहि अबहिं का करौं बड़ाई ॥
प्रथमहिं तासु तनय कपि मारा । सो सुनि रावन भयउ दुखारा ॥
जातुधान अंगद पन देखी । भय ब्याकुल सब भए बिसेषी ॥

रिपुबल धरषि हरषि कपि बालितनय बलपुंज ।
पुलक सरीर नयन जल गहे राम पद कंज ॥

सूरदास जी

परिचय—सूरदास जी का आसन कृष्ण-भक्त कवियों में सर्वोच्च है। इनका जन्म संवत् १५४० के लगभग, मथुरा आगरा के बीच रुनकता (रेणुका-क्षेत्र) गाँव में हुआ था और देहावसान संवत् १६२० के लगभग, पारासोली गाँव में। 'भक्तमाल' तथा 'चौरासी वैष्णवों की वार्ता' के अनुसार यह सारस्वत ब्राह्मण थे, परन्तु कई कहते हैं कि यह चंदबरदाई के वंशज भाट थे। कई इनको जन्मान्ध बताते हैं, परन्तु यह बात इनके पदों में प्रकृति के विविध रूपों तथा रंगों के विशद वर्णन को देखते हुए

सत्य नहीं प्रतीत होती। श्रीवल्लभाचार्य से भेंट होने पर यह उनके शिष्य बन गये और उनकी आज्ञा से श्रीमद्भागवत की कथा का मनोहर पदों में वर्णन करने लगे। यह काम इनका नित्य का हो गया। प्रतिदिन नये २ पद बना कर गाते, जिनका विशालसंग्रह 'सूरसागर' नाम से प्रख्यात हुआ। कहते हैं, इसमें सवा लाख पद थे, परन्तु अब पाँच छः हजार से अधिक नहीं मिलते। इसके अतिरिक्त इन्होंने चार ग्रंथ और लिखे थे, जिनमें सूरसारावली, साहित्यलहरी प्राप्य है और व्याहलो, नलदमयन्ती अप्राप्य। श्रीवल्लभाचार्य के अनन्तर उनके पुत्र गोस्वामी विट्ठलनाथ जी ने अपने समय के आठ सर्वोत्तम कृष्ण-भक्त कवियों को चुनकर 'अष्टछाप' की प्रतिष्ठा की, जिसमें प्रधानपद सूरदास जी को ही मिला।

सिद्धान्त—सूरदास जी श्रीवल्लभाचार्य के शिष्य होने से उनके पुष्टि-मार्ग के अनुयायी थे और भगवान् कृष्ण की प्रधानतया सख्यभाव से उपासना करते थे। तुलसीदास जी के समान लोकसंग्रह का भाव इनमें नहीं था। यह लोकपक्ष से उदासीन होकर अपने ही रंग में मस्त रहते थे।

कविता—इनकी कविता वात्सल्य और वियोगश्रृङ्गार के क्षेत्र में अद्वितीय है। वात्सल्य में तो शायद भारतीय साहित्य में ही नहीं, विश्व-साहित्य में भी इसके जोड़ की कविता मिलना संभव नहीं। यह मुक्तक के क्षेत्र में विकास की चरम सीमा पर पहुंच गई है। कहने को तो सूरसागर में संपूर्ण भागवत की कथा गाई गई है, परन्तु वास्तव में सूर की प्रतिभा के नृत्य की रङ्गस्थली दशम-स्कन्ध की कथा ही है, और उसमें भी श्रीकृष्ण का जन्म और उनका मथुरा-गमन, ये ही प्रधान हैं। शेष स्कन्धों की कथा को तो इतिवृत्त की पूर्ति के लिये थोड़े से पदों में कहकर मानो गले पड़ी बला से छुटकारा पा लिया है।

सूर जी ने श्रीकृष्ण की बाल-लीलाओं, यौवन-लीलाओं और गोपियों के संयोग-वियोग-श्रृङ्गार को लेकर एक से एक बढ़कर पदों की मधुमय बौछार सी लगा दी है। मालूम होता है भाव आप से आप दौड़े चले आरहे हैं; अलङ्कार आप ही अपने स्थान पर सज जाते हैं; भाषा भावों के सौन्दर्य पर मुग्ध होकर स्वयं उनका अनुसरण करती है; कल्पना पंख फैला

कर क्षण में आकाश पाताल को व्याप्त कर लेती है; प्रतिभा सूक्ष्म से सूक्ष्म बनकर वस्तुओं के अन्तरतम में प्रवेश कर जाती है; और नाटकीय पात्र के समान एक ही भाव अनेक रूपों और परिधानों में सामने आता और अपनी नूतनता तथा विचित्रता से चकित कर देता है। मानो सूर जी के हाथ में जादू की छड़ी है, जो अंधेरे गढ़े में पड़े हुए कंकड़ों को जगमगाते हुए रत्नों में परिवर्तित कर देती है, अज्ञात या उपेक्षित तुच्छ से तुच्छ भावों को भी सौन्दर्य, चमत्कार और महिमा मण्डित कर देती है। जैसे संस्कृत के महाकवि बाण के लिये कहा जाता है "बाणोच्छिष्टं जगत्सर्वम्" (सारा जगत् बाण की जूठन है) वैसे अपने सीमित क्षेत्र में सूर जी के लिये भी निःसंकोच कहा जा सकता है "सूरोच्छिष्टं जगत्सर्वम्"। वात्सल्य तथा संयोग वियोग-शृङ्गार के क्षेत्र में ऐसा कोई भाव नहीं जो सूरजी की प्रतिभा से अछूता छूट गया हो। प्रज्ञाचक्षु कवि ने भावावेश की अवस्था में अनुभूति की गहराई से जिधर रुख किया उधर ही कमाल कर दिया।

सूर जी ने कविता के लिये साधारण बोलचाल की व्रजभाषा को अपनाया और अपनी जादूभरी रचनाओं के प्रभाव से सुदीर्घ काल के लिये भारतवर्ष की सार्वदेशिक काव्यभाषा बना दिया। सूर और तुलसी इन दो ही महाकवियों की कविताओं का यह प्रभाव है कि हिन्दी आज भी साहित्योत्कर्ष के उत्तुङ्ग सिंहासन पर आसीन है।

प्रकृत—सूर का प्रायः ऐसा कोई भी पद नहीं जिसमें सरसता न हो, फिर भी हमने अपनी अभिरुचि से यहां थोड़े से पद चुने हैं, जिनमें अधिक विनय और वात्सल्य के हैं और कुछ अन्य विषयों के भी। इनसे सूर जी की सरसता, मधुरता, भावप्रवणता तथा काव्य-सौन्दर्य का आभास मिल जायगा।

वन्दना

विलावल

चरन-कमल बंदौं हरि राई।
जाकी कृपा पंगु गिरि लंघै, आँधरे को सब कछु दरसाई॥

बहिरौ सुनै, मूक मुनि बोलै, रंक चलै सिर छत्र धराई ॥
सूरदास स्वामी करुनामय, बार बार बंदौ तेहि पाई ॥

विनय

सारंग

मो सम कौन कुटिल खल कामी ।
जेहिं तनु दियौ ताहि बिसरायौ, ऐसो नौन-हरामी ॥
भरि भरि उदर विषय को धावौं, जैसे सूकर ग्रामी ।
हरिजन छाँड़ि हरीबिमुखन की निसिदिन करत गुलामी ॥
पापी कौन बड़ो है मो तें, सब पतितन में नामी ।
सूर, पतित को ठौर कहाँ है, सुनिए श्रीपति स्वामी ॥

देवगंधार

मेरो मन अनत कहाँ सुख पावै ।
जैसे उड़ि जहाज को पंछी पुनि जहाज पै आवै ॥
कमलनैन को छाँड़ि महातम और देव को ध्यावै ।
परमगंग को छाँड़ि पियासो दुर्मति कूप खनावै ॥
जिन मधुकर अंबुज रस चाख्यौ, क्यौं करील-फल खावै ।
सूरदास, प्रभु कामधेनु तजि छेरी कौन दुहावै ॥

नट

प्रभु मेरे औगुन चित न धरौ ।
समदरसी प्रभु नाम तिहारो, अपने पनहिं करौ ॥
इक लोहा पूजा में राखत, इक घर बधिक परौ ।
यह दुबिधा पारस नहिं जानत, कंचन करत खरौ ॥
इक नदिया इक नार कहावत, मैलो नीर भरौ ।
जब मिलि कै दोउ एक बरन भये, सुरसरि नाम परौ ॥
एक जीव इक ब्रह्म कहावत, सूर-स्याम झगरौ ।
अब की बेर मोहिं पार उतारौ, नहिं पन जात टरौ ॥

कान्हरा

दीनानाथ, अब बार तुम्हारी ।
पतित-उधारन बिरद जानि कै, बिगरी लेहु सँभारी ॥
बालापन खेलत हीं खोयौ, जुवा विषय-रस-माते ।
वृद्ध भये सुधि प्रगटी मोकौं, दुखित पुकारत ताते ।
सुतनि तज्यौ, तिय तज्यौ, भ्रात तजि, तन-त्वच भई जु न्यारी ।
स्रवन न सुनत, चरन गति थाकी, नैन बहैं जल-धारी ॥
पलित केस, कफ कंठ निरोध्यौ, कल न परै दिन-राती ।
माया मोह न छाँड़ै तृसना, ए दोऊ दुख-दाती ॥
अब या बिथा दूरि करिबे कौं, और न समरथ कोई ।
सूरदास प्रभु करुना-सागर, तुम तें होइ सो होई ॥

बिलावल

अब कैं माधव मोहिं उधारि ।
मगन हौं भव-अम्बुनिधि में, कृपा-सिन्धु मुरारि ॥
नीर अतिगंभीर माया, लोभ-लहरि तरंग ।
लिये जात अगाध जल में गहे ग्राह-अनंग ॥
मीन इन्द्रिय अतिहि काटति, मोट अघ सिर भार ।
पग न इत-उत धरन पावत, उरझि मोह-सिवार ॥
काम क्रोध समेत तृष्णा, पवन अतिझकझोर ।
नाहिं चितवन देत तिय सुत नाम-नौका ओर ॥
थक्यौ बीच बिहाल बिहवल, सुनहु करुना-मूल ।
सूर, भुजगहि काढ़ि डारहु, स्याम ब्रज के कूल ॥

धनाश्री

अपनैं जान मैं बहुत करी ।
कौन भाँति हरि कृपा तुम्हारी, सो स्वामी, समुझी न परी ॥
दूरि गयौ दरसन के ताईं, व्यापक प्रभुता सब बिसरी ।
मनसा-वाचा-कर्म-अगोचर सो मूरति नहिं नैन धरी ॥

गुन बिनु गुनी, सरूप रूप बिनु, नाम बिना श्री स्याम हरी।
कृपासिन्धु अपराध अपरिमित, छमौं सूर तें सब बिगरी॥

कान्हरा

कीजै प्रभु अपने बिरद की लाज।
महापतित कबहूँ नहिं आयौ, नैकु तिहारे काज॥
माया सबल धाम-धन-बनिता बाँध्यौ हौं इहि साज।
देखत सुनत सबै जानत हौं, तऊ न आयौ बाज॥
कहियत पतित बहुत तुम तारे स्रवननि सुनी अवाज।
दई न जात खेवट उतराई, चाहत चढ्यौ जहाज॥
लीजै पार उतारि सूर कों महाराज ब्रजराज।
नई न करन कहत, प्रभु तुम हौ सदा गरीब-निवाज॥

सारंग

तुम्हारी भक्ति हमारे प्रान।
छूटि गये कैसे जन जीवैं ज्यों प्रानी बिनु प्रान॥
जैसे नाद-मगन बन सारँग बधै बधिक तनु बान।
ज्यों चितवै ससि ओर चकोरी देखत ही सुख मान॥
जैसे कमल होत परफुल्लित देखत प्रियतम भान।
सूरदास प्रभु हरिगुन त्योंहीं सुनियतु नित-नित कान॥

नोक-झोंक

बिलावल

कब तुम मोसे पतित उधारो।
पतितनि में विख्यात पतित हौं, पावन नाम तिहारो॥
बड़े पतित पासँगहूँ नाहीं, अजमिल कौन बिचारो।
भाजै नरक नाम सुनि मेरो, जमनि दियो हठि तारो॥
छुद्र पतित तुम तारि रमापति, जिय जु करौ जनि गारो।
सूर पतित कों ठौर कहूँ नहिं, है हरि-नाम सहारो॥

नट

कहावत ऐसे दानी दानि !
चारि पदारथ दिये सुदामहिं, अरु गुरु कौ सुत आनि ॥
रावन के दस मस्तक छेदे, सर हति सारँगपानि ।
लंका-राज त्रिभीषन दीनो, पूरबली पहिचानि ॥
मित्र सुदामा कियो अजाचक, प्रीति पुरातन जानि ।
सूरदास सौं कहा निठुराई, नैननिहूँ की हानि ॥

सारंग

प्रभु हौं सब पतितन कौ राजा ।
पर-निंदा मुख पूरि रह्यौ जग, यह निसान निज बाजा ॥
तृष्णा देस रु सुभट मनोरथ, इंद्रिय खडग हमारे ।
मंत्री काम कुमत देवै कौं, क्रोध रहत प्रतिहारे ॥
गज अहँकार चढ्यौ दिग-विजयी, लोभ छत्र धरि सीस ।
फौज असत संगति की मेरी, ऐसो हौं मैं ईस ॥
मोह मदै बंदी गुन गावत, मागध दोष अपार ।
सूर, पाप कौ गढ़ दृढ़ कीने, मुहकम लाय किवार ॥

सारंग

प्रभु हौं सब पतितन को टीको ।
और पतित सब दिवस चारि के हौं जन्मान्तर ही को ॥
बधिक अजामिल गनिका तारी और पूतना ही को ।
मोहिं छाँड़ि तुम और उधारे मिटे शूल क्यों जी को ॥
कोउ न समरथ अघ करिबे को खैंचि कहत हौं लीको ।
मरियत लाज सूर पतितन में हमहूँ ते को नीको ॥

देवगंधार

मोहिं प्रभु, तुमसों होड़ परी ॥
ना जानौं करिहौ जु कहा तुम, नागर नवल हरी ।
पतित-समूहनि उद्धरिबे कौं, तुम जिय जक पकरी ॥

मैं तो राजिवनैननि दुरि गयो, पाप-पहार-दरी।
एक अधार साधु-संगति कौ, रचि-पचि कैं सँवरी॥
भई न सोचि-सोचि जिय राखी, अपनी धरनि धरी।
मेरी मुकति बिचारत हौ प्रभु, पूँछत पहर घरी॥
स्रम तें तुम्हैं पसीना ऐहैं, कत यह जकनि करी।
सूरदास बिनती कहा बिनवै, दोषहिं देह भरी॥

आत्म-प्रबोधन और उपदेश

सारंग

आछौ गात अकारथ गारयौ।
करी न प्रीति कमल-लोचन सों जनम-जनम ज्यौं हारयौ॥
निसि-दिन बिषय-बिलासनि बिलसत फूटि गई तुअ चारयौ।
अब लाग्यौ पछितान पाय दुख दीन दई कौ मारयौ॥
कामो कृपन कुचील कुदरसन, को न कृपा करि तारयौ।
तातें कहत दयालु देव पुनि, काहे सूर बिसारयौ॥

सारंग

रे मन राम सों करि हेत।
हरि-भजन की बारि करि लै, उबरै तेरो खेत॥
मन सुआ, तन पींजरा, तिहि माँझ राखौ चेत।
काल फिरत बिलार तनु धरि, अब घरी तिहिं लेत॥
सकल बिषय-बिकार तजि तू उतर सागर-सेत।
सूर भजु गोबिंद-गुन तू गुर बताए देत॥

कान्हरा

सोइ रसना, जो हरिगुन गावै।
नैननि की छबि यहै चतुरता, जो मुकुंद-मकरंदहिं धावै॥
निर्मल चित तौ सोई साँचौ कृष्ण बिना जिहिं और न भावै।
स्रवननि की जु यहै अधिकाई, सुनि हरि-कथा सुधारस प्यावै॥

कर तेई जे स्यामहिं सेवैं, चरननि चलि बृन्दाबन जावैं।
सूरदास, जैयै बलि ता की, जो हरिजू सों प्रीति बढ़ावै॥

धनाश्री

सबै दिन एक समान न जात।
सुमिरन ध्यान कियौ करि हरि कौ जब लग तन कुसलात॥
कबहूँ कमला चपला पा करि टेढ़े टेढ़े जात।
कबहुं कि मग मग धूरि बटोरत भोजन कों बिलखात॥
या देही का गरब बावरौ तदपि फिरत इतरात।
बाद-बिबाद सबै दिन बीते खेलत ही अरु खात॥
जोग न जुगति, ध्यान नहिं पूजा, वृद्ध भये अकुलात॥
बालापन खेलत ही खोयो तरुनापन अलसात।
सूरदास औसर के बीते रहि है पुनि पछितात॥

वात्सल्य (बाललीला)

आसावरी

खेलत नँद-आँगन गोबिंद।
निरखि निरखि जसुमति सुख पावति, बदन मनोहर चंद॥
कटि किंकिनी, कंठमनि की द्युति, लट मुकुता भरि भाल।
परम सुदेश कंठ केहरि-नख, बिच बिच वज्र प्रबाल॥
करनि पहुँचियाँ, पग पैजनियाँ, रज-रंजित पट पीत।
घुटुरनि चलत, अजिर में बिहरत, मुख मंडित नवनीत॥
सूर विचित्र कान्ह की बानिक, कहति नहीं बनि आवै।
बाल-दसा अवलोकि सकल मुनि जोग बिरति बिसरावै॥

धनाश्री

किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत।
मनिमय कनक नंद के आँगन, बिंब पकरिबे धावत॥
कबहुँ निरखि हरि आपु छाँह कों, कर सौं पकरन चाहत।
किलकि हँसति राजति द्वै दँतियाँ पुनि-पुनि तिहिं अवगाहत॥

कनकभूमि पर कर-पग-छाया, यह उपमा इक राजत।
करि-करि प्रतिपद प्रतिमनि बसुधा कमल-बैठकी साजत ॥
बाल दसा सुख निरखि जसोदा पुनि-पुनि नंद बुलावति।
अँचरा तर लै ढाँकि सूर प्रभु, जननी दूध पियावति ॥

देवगंधार

सिखवति चलन जसोदा मैया।
अरबराइ कैं पानि गहावति, डगमगाइ धरनी धरै पैया ॥
कबहुँक सुन्दर बदन बिलोकति उर आनँद भरि लेत बलैया।
कबहुँक कुल देवता मनावति चिरजीवहु मेरो कुँवर कन्हैया ॥
कबहुँक बल को टेरि बुलावति, इहिं आँगन खेलौ दोउ भैया।
सूरदास, स्वामी की लीला अतिप्रताप बिलसत नन्दरैया ॥

देवगंधार

कहन लगे मोहन मैया मैया।
पिता नंद सो बाबा बाबा, अरु हलधर सों भैया ॥
ऊँचे चढ़ि चढ़ि कहति जसोदा लै लै नाम कन्हैया।
दूरि कहूँ जिनि जाहु लला रे, मारैगी काहू की गैया ॥
गोपी ग्वाल करत कौतूहल घर घर लेत बलैया।
मनि-खंभनि प्रतिबिम्ब बिलोकत नचत कुँवर निज पैया ॥
नंद जसोदा जू के उर तें इहि छबि अनत न जैया।
सूरदास, प्रभु तुम्हरे दरस कों, क्यों न जाइ बलि मैया ॥

रामकली

मैया कबहिं बढ़ैगी चोटी।
किती बार मोहि दूध पिवत भई, यह अजहूँ है छोटी ॥
तू जो कहति बल की बेनी ज्यौं ह्वै है लाँबी मोटी ॥
काढ़त गुहत न्हवावत ओंछत नागिनि सी भुइँ लोटी ॥
काचो दूध पिवावति पचि-पचि, देति न माखन रोटी।
सूरस्याम चिर जीवौ दोउ भैया, हरि-हलधर की जोटी ॥

टोड़ी

मैया, बहुत बुरो बलदाऊ।
कहन लग्यौ, 'बन बड़ो तमासो सब मौंडा मिलि आऊ'॥
मोहूँ कों चुचकारि गयौ लै जहाँ सघन वन झाऊ।
भागि चल्यौ कहि, गयौ वहाँ तें कांटि खाइ रे हाऊ॥
हौं डरपौं अरु रोवौं, काँपौं, कोउ नहिं धीर धराऊ।
उनके संग न भाजि सकौं, वै भाजे जात अगाऊ॥
मोसों कहत चोर तू कान्हा, आपु कहावत साहू।
सूरदास, बल बड़ौ चबाई, तैसेहिं मिले सखाहू॥

गौरी

मैया, मोहिं दाऊ बहुत खिझायौ।
मोसों कहत मोल कौ लीन्हौं, तू जसुमति कब जायौ॥
कहा कहौं, इहिं रिस के मारे खेलन हौं नहिं जात।
पुनि-पुनि कहत कौन है माता, को है तेरो तात॥
गोरे नंद, जसोदा गोरी तू कत स्याम सरीर।
चुटकी दै-दै हँसत ग्वाल सब, सिखै देत बलबीर॥
तू मोही को मारन सीखी, दाउहिं कबहुँ न खीझै।
मोहन-मुख रिस की यह बातैं, जसुमति सुनि-सुनि रीझै॥
सुनहु कान्ह, बलभद्र चबाई जनमत ही कौ धूत।
सूर, स्याम मोहिं गोधन की सौं, हौं माता तू पूत॥

यशोदा का कृष्ण-विरह

सोरठ

जसोदा कान्ह कै बूझै।
फूटि न गई तिहारी चारौ, कैसे मारग सूझै॥
इक तनु जारो जात बिन देखे, अब तुम दीनों फूँक।
यह छतियाँ मेरे कुँवर कान्ह बिनु फटि न गई द्वै टूक॥

धिग तुम, धिग ये चरन अहो पति, अध-बोलत उठि धाये।
सूर, स्याम बिछुरन की हमपै देन बधाई आये॥

सोरठ

मेरौ कान्ह कमलदल-लोचन।
अबकी बेरि बहुरि फिर आवहु, कहा लगे जिय सोचन॥
वह लालसा होति हिय मेरे, बैठी देखति रहिहौं।
गाइ-चरावन कान्ह कुँवर सों भूलि न कबहूँ कहिहौं॥
करत अन्याय न कबहुँ बरजिहौं, अरु माखन की चोरी।
अपने जियत नैन भरि देखौं, हरि-हलधर की जोरी॥
एक बेर ह्वैजाहु यहाँ लौं, मेरे ललन कन्हैया।
चारि दिवसहीं पहुनइ कीजौ, तलफति तेरी मैया॥

यशोदा का देवकी को संदेश

रामकली

सँदेसो देवकी सों कहियौ।
हौं तौ धाय तिहारे सुत की, मया करति नित रहियौ॥
जदपि टेव जानति तुम उनकी, तऊ मोहिं कहि आवै।
प्रातहिं उठत तुम्हारे कान्हहिं माखन-रोटी भावै॥
तेल उबटनो अरु तातो जल देखत ही भजि जाते।
जोइ-जोइ माँगत सोइ सोइ देती,क्रम-क्रम करिकै न्हाते॥
सूर,पथिक सुनि, मोहिं रैनि दिन बढ्यौ रहत उर सोच।
मेरो अलक लडैतो मोहन ह्वै है करत सँकोच॥

सारंग

जो पै राखति हौ पहिचानि।
तौ बारेक मेरे मोहन को मुख देहु दिखाई आनि॥
तुम रानी बसुदेव-गिरहिनी, हम अहीर ब्रजबासी।
पठै देहु मेरो लाल लडैतो, वारौं ऐसी हाँसी॥
भली करी कंसादिक मारे, अवसर-काज कियौ।

अब इन गैयनि कौन चरावै भरि-भरि लेत हियौ ॥
खान-पान परिधान राज-सुख केतोउ लाड लडावै।
तदपि सूर मेरो अति बालक माखनहीं सचु पावै ॥

यशोदा का कृष्ण को संदेश

धनाश्री

ऊधौ, तिहारे पाँइ लागति हौं,
कहियौ स्याम सों इतनी बात।
इतनी दूर बसत क्यों बिसरे अपनी जननी तात ॥
जा दिन तें मधुपुरी सिधारे स्याम मनोहर गात।
ता दिन तें मेरे नैन-पपीहा दरस-प्यास अकुलात ॥
जहँ खेलन को ठौर तुम्हारौ नंद देखि मुरझात।
जो कबहूँ उठि जात खरकि लौं गाइ दुहावन प्रात ॥
दुहत देखि औरन के लरिका प्रान निकसि नहिं जात।
सूरदास, बहुरौ कब देखौं कोमल कर दधि खात ॥

सोरठ

कहियौ स्याम सों समुझाई।
वह नातो नहिं मानत मोहन मनों तुम्हारी धाइ ॥
एक बार माखन के काजैं राख्यौ मैं अटकाइ।
वाकौ बिलगु मानौ जिनि मोहन, लागति मोहि बलाइ ॥
बारहिबार यहै लव लागी, गहे पथिक के पाँइ।
सूरदास, या जननी कौ जिय राखौ बदन दिखाइ ॥

गोपी-उद्धव-संवाद

काफी

निरगुन कौन देस कौ वासी।
मधुकर, कहि समुझाइ, सौंह दै बूझति साँच न हाँसी ॥
को है जनक, जननि को कहियत, कौन नारि, को दासी।

कैसो बरन, भेष है कैसो, केहि रस में अभिलाषी ॥
पावैगो पुनि कियौ आपनो जो रे कहैगो गाँसी ।
सुनत मौन ह्वै रह्यो ठगो-सो सूर सबै मति नासी ॥

टोड़ी

ऊधौ, होहु इहाँ तें न्यारे ।
तुमहिं देखि तन अधिक तपत है, अरु नयननि के तारे ॥
अपनो जोग सैंति किन राखत हियाँ देत कत डारे ।
तुम्हरे हित अपने मुख करिहैं मीठे तें नहिं खारे ॥
हम गिरिधर के नाम गुननि बस और काहि उर धारे ।
सूरदास, हम सबै एकमत तुम सब खोटे कारे ॥

केदारा

हम तौ नंदघोष के बासी ।
नाम गोपाल, जाति कुल गोपहि, गोप गोपाल-उपासी ॥
गिरवरधारी, गोधन चारी, बृंदाबन अभिलाषी ।
राजा नंद, जसोदा रानी, जलधि नदी जमुना-सी ॥
प्रान हमारे पास मनोहर कमलनैन सुखरासी ।
सूरदास, प्रभु कहैं कहाँ जौं अष्ट महासिधि दासी ॥

गोपियों का कृष्ण को संदेश

ईमन

नाथ अनाथन की सुधि लीजै ।
गोपी गाइ ग्वाल-गो-सुत सब दीन मलीन दिनहिं दिन छीजै ॥
नैन नीर-धारा बाढ़ी अति ब्रज किन कर गहि लीजै ।
इतनी बिनती सुनहु हमारी बारक तौ पतियाँ लिखि दीजै ॥
चरन-कमल-दरसन नव-नौका करुनासिन्धु जगत जस लीजै ।
सूरदास, प्रभु आस मिलन की एकबार आवन ब्रज कीजै ॥

मलार

ऊधौ, इतनी कहियौ जाइ।
अतिकृसगात भईं ये तुम बिनु परम दुखारी गाइ ॥
जल-समूह बरषति दोउ आँखनि, हूँकतिं लीने नाउँ।
जहाँ-जहाँ गो-दोहन कीनो सूँघति सोई ठाउँ॥
परतिं पछार खाइ छिनहीं छिन अति आतुर ह्वै दीन।
मानहुँ सूर काढ़ि डारी हैं बारि मध्य तें मीन॥

कृष्ण-विरह में व्रज की दशा

गौरी

कहाँ लौं कहिए ब्रज की बात।
सुनहु स्याम, तुम बिनु उन लोगनि जैसें दिवस बिहात ॥
गोपी गाइ ग्वाल गोसुत वै मलिन बदन कृस गात।
परमदीन जनु सिसिर-हिमी-हत अंबुज-गन बिनु पात ॥
जो कहुँ आवत देखि दूरि तें पूँछत सब कुसलात।
चलन न देत प्रेम-आतुर उर, कर चरननि लपटात॥
पिक चातक बन बसन न पावहिं, बायस बलिहिं न खात।
सूर, स्याम संदेसनि के डर पथिक न उहिं मग जात॥

सारंग

दिन दस घोष चलहु गोपाल।
गाइन के अवसेर मिटावहु, लेहु आपने ग्वाल ॥
नाचत नहीं मोर ता दिन तें, मुदित न पावस-काल।
मृगहु दूबरे नाथ-दरस बिनु, सुनत न बेनु रसाल ॥
बृंदावन वह हरित न माधव, मुरझे तरुन तमाल।
सूर, स्याम मैया बिलपति है, चलिए घर नँदलाल॥

विविध

नट

जौ लौं सत्य स्वरूप न सूझत।
तौ लौं मनु मनि कंठ बिसारै फिरतु सकल बन बूझत॥
अपनौं ही मुख मलिन मंदमति देखत दरपन माहिं।
ता कालिमा मेटिबे कारन पचतु पखारतु छाहिं॥
तेल तूल पावक पुट भरि धरि बनै न दिया प्रकासत।
कहत बनाय दीप की बातैं, कैसे कैं तम नासत॥
सूरदास, जब यह मति आई, वे दिन गये अलेखे।
कह जानै दिनकर की महिमा अंध नयन बिनु देखे॥

देश

वा पटपीत की फहरानि।
कर धरि चक्र चरन की धावनि, नहिं बिसरति वह बानि॥
रथ तें उतरि अवनि आतुर ह्वै, कच रज की लपटानि।
मानौं सिंह सैल तें निकस्यौ महा मत्तगज जानि॥
जिन गुपाल मेरो प्रन राख्यौ मेटि बेद की कानि।
सोई सूर सहाय हमारे निकट भये हैं आनि॥

कल्याण

धनि यह बृंदावन की रेनु।
नंदकिसोर चराई गैयाँ, बिहरि बजाई बेनु॥
मनमोहन को ध्यान धरै जो अति सुख पावत चेनु।
चलत कहाँ मन, बसहि सनातन जहाँ लेन नहिं देनु॥
यहाँ रहौ जहँ जूठन पावैं ब्रजवासी के ऐनु।
सूरदास, ह्याँ की सरवरि नहिं कल्पबृच्छ सुरधेनु॥

———

मीराबाई

परिचय—प्रेम-प्रतिमा मीराबाई भक्त स्त्रियों और स्त्री कवियों में प्रमुख हैं। इनका जन्म संवत् १५६० के लगभग और देहान्त संवत् १६३० के लगभग हुआ। इनकी जन्मभूमि जोधपुर राज्य के मेड़ता इलाके का कुड़की या चौकड़ी गाँव है। यह जोधपुर बसाने वाले राव जोधा जी के पुत्र, राव दूदा जी के चतुर्थ पुत्र रत्नसिंह की इकलौती पुत्री थीं। इनका विवाह संवत् १५७३ में उदयपुर के महाराणा साँगा के बड़े पुत्र कुँवर भोजराज से हुआ था। इस प्रकार यह राजपुत्री और राजपत्नी थी। बचपन में ही माता का स्वर्गवास हो जाने से इनके दादा राव दूदा जी ने इनको अपने पास बुला लिया था। राव दूदा जी परम वैष्णव और साधुसेवी थे। उनके लालन-पालन में मीरा के हृदय में भगवद्भक्ति और साधुसंगति का बीजारोपण हुआ। कहते हैं, एक बार राव दूदा जी के यहां एक साधु आया। उसके पास गोपाल जी की एक अतिसुन्दर मूर्ति थी। मीरा उसे देख मुग्ध हो गई और लेने के लिये आग्रह करने लगीं। लाचार साधु ने वह मूर्ति मीरा को दे दी। अब गुड़ियों के शृङ्गार के साथ मूर्ति की भी पूजा-अर्चना होने लगी, गोपाल जी के त्योहार मनाए जाने लगे। वह बचपन की क्रीड़ा अनन्त क्रीड़ा का मूल बन गई। उस खिलौना-गोपालमूर्ति की लगन ने एकान्त प्रेमसाधना का द्वार खोलकर गिरधर गोपाल को मीरा के जीवन का सर्वस्व बना दिया—"मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई"।

कहते हैं, विवाह के बाद दस वर्ष के अन्दर ही मीरा विधवा हो गई। अब इन्होंने संसार का माया-मोह छोड़कर अपना जीवन गिरधर गोपाल के चरणों में अर्पण कर दिया, दिन-दिन तन्मयता बढ़ती गई। यह लाज छोड़ मन्दिरों में जातीं, भक्तों और साधु-सन्तों के बीच में श्रीकृष्ण की मूर्ति के सामने आनन्दमग्न हो नाचा और गाया करती थीं। इस राजकुल की मर्यादा के विरुद्ध आचरण से इनके परिवार वाले इनसे रुष्ट रहा करते थे। इनके देवर राणा विक्रमाजीत ने इन्हें कई प्रकार के कष्ट दिये, यहां तक कि इनका अन्त करने के लिये विष का प्याला भी भेजा। यह उसे भगवान् का चरणा-

मृत समझ कर पी गईं। भगवत्कृपा से उस विष का इन पर कुछ भी असर न हुआ। इन्होंने राणा से कहला भेजा—"थारी मारी ना मरूँ मेरो राखणहारो और"। अन्त में इन्होंने घर छोड़ दिया और तीर्थयात्रा को निकल पड़ीं। कुछ दिन वृन्दावन रह कर द्वारका आगईं। वहां श्रीरणछोड़ के मन्दिर में रहतीं और उनकी अनन्य उपासना में भावमग्न हो नये२ पद गाया करतीं। यही कारण है कि गुजराती में इनके बहुत पद मिलते हैं, और गुजरात के घर २ में इनकी प्रसिद्धि है। अन्त में यह देवी द्वारका में ही अपने उपास्य के स्वरूप में समा गईं।

सिद्धान्त—मीरा कृष्ण-भक्ति-परम्परा की अनुगामिनी होकर माधुर्य-भाव से भगवान् की उपासना करती थीं, गिरधर गोपाल को प्रियतम के रूप में भजती थीं। इनका वैराग्य और त्याग अनुपम है। इन्होंने आत्म-संमान और राजसी वैभव को ठुकरा कर प्रियतम के प्रेम को ही जीवन का एकमात्र लक्ष्य बनाया। कहते हैं, रामानन्द जी के शिष्य रैदास जी से मीरा ने दीक्षा ली थी। इनके कुछ पदों में इस बात का उल्लेख मिलता है। परन्तु कृष्णोपासिका मीरा का रामोपासक रैदास जी की शिष्या होना संगत नहीं प्रतीत होता। इसीलिये आलोचकों का मत है कि किसी ने रैदास जी का महत्त्व बढ़ाने के लिये मीरा को उनकी शिष्या बताने वाले पद मीरा के नाम से लिख दिये हैं, वे पद मीरा के नहीं हैं। मीरा के कुछ पद हठयोग की प्रक्रिया के अनुसार सुषुम्णा, अनहदनाद आदि का भी उल्लेख करते हैं, और कई पदों में किसी योगी का भी वर्णन मिलता है, जिसके लिये मीरा ने अधिक उत्सुकता प्रकट की है। परन्तु वह योगी ही इनका गुरु था, यह बात भी निश्चित नहीं है।

कविता—मीरा की कविता में मनोरागों को उत्तेजित कर हृदय को अपने रंग में रँग देने वाला प्रभाव, सरलता, स्वाभाविकता, सरसता, व्यञ्जकता, उमंग, भावुकता, तन्मयता आदि कविता के सब गुण अपने निराले रूप में विद्यमान हैं। 'प्रेम की पीर' पद २ में छलक रही है। रहस्यभावना की सुन्दर अभिव्यञ्जना है। परन्तु यह रहस्यवाद निर्गुणवादियों के ब्रह्मवाद का सा शुष्क नहीं, इसमें हृदय की कोमलता का योग है। इसमें

सूफियों का सूक्ष्म ईश्वर स्थूल रूप में प्रकट है; निराकार ब्रह्म साकार होकर—अपनी रूपमाधुरी बरसा रहा है। उसी से मिलने की उत्कण्ठा से मीरा व्याकुल हैं, उसी के विरह में तड़प रही हैं—"घायल सी घूमत फिरूं मेरा दरद न जाने कोय"।

मीरा का विरह-दुःख अपने प्रियतम के वियोग में उठती हुई तीखी टीस है, यह प्रेम-विह्वल साधक का दुःख है, प्रेमी का दुःख है, कवि का दुःख नहीं। यह वर्णन के लिये कल्पना की जाने वाली चीज़ नहीं, हृदय में स्वयं उठने वाली तड़प है। इसमें मीरा का सादृश्य कोई भी कवि नहीं कर सकता। मीरा का आत्मसमर्पण पूर्ण है; वह सर्वथा अपने गिरधर गोपाल की हो चुकी हैं; उसके समस्त कर्म उसी की अर्चना-पूजा हैं; उसकी उपासना का अन्तःप्रवाह अविच्छिन्न चलता रहता है—"जहँ तहँ पाँव धरूँ धरणी पर तहँ तहँ निरत करूँ री"। इस अवस्था ने इनकी कविता में एक चुभीलापन पैदा कर दिया है, जिसके कारण अलङ्कारों के चमत्कार और भाषा के परिष्कार के बिना भी वह साहित्य की अतुल संपत्ति बन गई है। सूर जी ने अपनी भक्ति की प्रगाढ़ता का प्रकाशन गोपियों के द्वारा किया और जायसी ने अपने प्रेम का अभिव्यञ्जन पद्मावती के द्वारा। परन्तु मीरा को अपने भाव प्रकट करने के लिये किसी मध्यस्थ की आवश्यकता नहीं हुई। यह अपने भाव स्वयं कहती हैं, इनका इष्टदेव से साक्षात् सबन्ध है। यह मीरा की प्रधान विशेषता है, जिसके कारण इनके पदों में इनके व्यक्तित्व की गहरी छाप है। इस दृष्टि से हिन्दी के भक्तिमय गीति-काव्य में मीरा का स्थान सूर जी से कदाचित् ही उतर कर हो।

इनके पदों की भाषा अधिकतर राजस्थानी-मिश्रित हिन्दी है और कहीं २ विशुद्ध साहित्यिक व्रजभाषा है। इनके बनाए चार ग्रंथ कहे जाते हैं—राग गोविन्द, राग सोरठ, नरसी जी रो मायरो, गीतगोविन्द टीका। मीरा के उपलब्ध प्रकीर्ण पद पहले दो ग्रंथों में से होंगे।

प्रकृत—मीरा का प्रत्येक पद हृदय की कविता है, प्राणों में स्पन्दन पैदा करने वाला है, सरस है, मधुर है। यहां कुछ पद उद्धृत किये जाते हैं, जिनसे मीरा की कविता की प्रायः सब विशेषताएँ स्फुट हो जाएँगी।

(१)

मन रे ! परसि हरि के चरन ॥

सुभग सीतल कमल कोमल, त्रिविध ज्वाला हरन ।
जे चरण प्रह्लाद परसे, इन्द्र पदवी धरन ॥
जिन चरन ध्रुव अटल कीन्हों, राखि अपने सरन ।
जिन चरन ब्रह्मांड भेट्यो, नख सिखौ श्रीभरन ॥
जिन चरन प्रभु परसि लीन्हें, तरी गौतम घरन ।
जिन चरन कालीहि नाथ्यो, गोप लीला करन ॥
जिन चरन धारथो गोवरधन, गरब मघवा हरन ।
दास मीरा लाल गिरधर, अगम तारन तरन ॥

(२)

भज मन चरण कमल अबिनासी ।

जेतइ दीसे धरण गगन बिच, तेतई सब उठि जासी ।
कहा भयो तीरथ ब्रत कीन्हें, कहा लिये करटव कासी ॥
इस देही का गरब न करना, माटी में मिल जासी ॥
यो संसार चहर की बाजी, साँझ पड्याँ उठि जासी ॥
कहा भयो है भगवाँ पहरथाँ, घर तज भये सँन्यासी ।
जोगी होय जुगति नहिं जाणी, उलटि जनम फिर आसी ॥
अरज करौं अबला कर जोरे, स्याम तुम्हारी दासी ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर काटो जम की फाँसी ॥

(३)

बसो मेरे नैनन में नँदलाल ॥

मोहनी मूरति साँवरी सूरत नैना बने बिसाल ।
अधर सुधारस मुरली राजति उर बैजंती माल ॥
छुद्रघंटिका कटि तट सोभित नूपुर सबद रसाल ।
मीरा प्रभु संतन सुखदाई भगत-बछल गोपाल ॥

(४)

पायो जी मैंने नाम रतन धन पायो ।
बस्तु अमोलक दी मेरे सतगुर करि किरपा अपनायो ॥

जनम जनम की पूंजी पाई जग में सबै खोवायौ।
खरचै नहिं कोई चोर न लेवै दिन दिन बढ़त सवायौ॥
सत की नाम खेवटिया सतगुर भवसागर तरि आयौ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर हरखि हरखि जस गायौ॥

(५)

मेरे तो गिरधर गोपाल, दूसरो न कोई।
जाके सिर मोर मुकुट मेरो पति सोई॥
छाँड़ि दई कुल की कानि कहा करिहै कोई।
संतन ढिग बैठि बैठि लोक-लाज खोई॥
अँसुवन जल सींचि सींचि प्रेम बेलि बोई।
अब तो बेलि फैलि गई, आनँद फल होई॥
राणा विष को प्याला भेज्यो, पीय मग्न होई॥
भगति देखि राजी हुई, जगत देखि रोई।
मीरा प्रभुचरण लागी, होनी हो सो होई॥

(६)

हरि मेरे जीवन प्रान अधार।
और आसिरो नाँही तुम बिन तीनूं लोक मँझार॥
आपु बिना मोहि कछु न सुहावै निरख्यो सब संसार।
मीरा कहै मैं दास रावरी दीजै मतो बिसार॥

(७)

लागी मोहि राम खुमारी हो॥
रमझम बरसै मेहड़ा भीजै तन सारी हो।
चहुँ दिस चमकै दामनी गरजै घन भारी हो॥
सतगुर भेद बताइया खोली भरम किंवारी हो।
सब घट दीसै आतमा सबही सूं न्यारी हो॥
दीपक जोऊँ ग्यान का चढ़ूँ अगम अटारी हो।
मीरा दासी राम की इमरत बलिहारी हो॥

(८)

तुम सुणो दयाल म्हाँरी अरजी।
भौ सागर में बही जात हूँ, काढ़ो तो थाँरी मरजी।
यो संसार सगो नहिं कोई, साँचा सगा रघुवर जी॥
मात-पिता अरु कुटुँब कबीलो, सब मतलब के गरजी।
मीरा की प्रभु अरजी सुन लो चरण लगाओ थाँरी मरजी॥

(९)

हरि! तुम हरो जन की भीर।
द्रौपदी की लाज राखी, तुम बढायो चीर॥
भक्त कारण रूप नरहरि, धरयो आय सरीर।
हरिनकस्यप मार लीन्हों, धरयो नाँहिन धीर॥
बूड़ते गजराज राख्यो, कियो बाहर नीर।
दास मीरा लाल गिरधर, दुख जहाँ तहँ पीर॥

(१०)

म्हाँ ने चाकर राखो जी,
गिरिधारी लला चाकर राखो जी॥
चाकर रहसूं, बाग लगासूं, नित उठ दरसन पासूं।
बृन्दाबन की कुंज गलिन में, गोबिंद लीला गासूं॥
चाकरी में दरसन पाऊँ, सुमिरन पाऊँ खरची।
भाव-भगति जागीरी पाऊँ, तीनों बातां सरसी॥
मोर मुकुट पीताम्बर सोहे, गल बैजन्ती माला।
बृन्दाबन में धेनु चरावे, मोहन मुरली वाला॥
ऊँचे ऊँचे महल बनाऊँ, बिच बिच राखूं बारी।
साँवरिया के दरसन पाऊँ, पहिर कुसुंबी सारी॥
जोगी आया जोग करन कूँ, तप करने संन्यासी।
हरीभजन को साधू आये, बृन्दाबन के बासी॥
मीरा के प्रभु गहिर गँभीरा, हृदय रहो जो धीरा।
आधी रात प्रभु दरसन दैहैं जमुना जी के तीरा॥

(११)

घुँघरू बाँध मीरा नाची रे पग घुँघरू ॥
लोग कहैं मीरा होगइ बावरि, सास कहै कुलनासी रे।
जहर का प्याला राणा जी ने भेजा, पीवत मीरा हाँसी रे ॥
मैं तो अपने नाराणा की, हो गई आपहि दासी रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, बेग मिला अबिनासी रे ॥

(१२)

आली म्हाँने लागे बृन्दाबन नीको।
घर घर तुलसी ठाकुर पूजा दरसण गोबिंद जी को ॥
निरमल नीर बहत जमना में भोजन दूध दही को।
रतन सिंघासण आप विराजे मुगट धरयो तुलसी को ॥
कुंजन कुंजन फिरत राधिका सबद सुणत मुरली को।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर भजन बिना सब फीको ॥

SABHA PATIALA

(१३)

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मना रे।
बिन करताल पखावज बाजै, अणहद की झणकार रे ॥
बिनि सुर राग छतीसूँ गावै रोम रोम रंग सार रे।
सील सँतोख की केसर घोली प्रेम प्रीत पिचकार रे ॥
उड़त गुलाल लाल भयो अंबर बरसत रंग अपार रे।
घट के सब पट खोल दिये हैं लोक लाज सब डार रे ॥
होरी खेलि पीव घर आये सोइ प्यारी पिय प्यार रे।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर चरन-कमल बलिहार रे ॥

—:o:—

केशवदास

परिचय—केशवदास जी हिन्दी में शास्त्रीय पद्धति से काव्यरचना पर लक्षण-ग्रन्थ रचने वालों में प्रधान हैं। इनका जन्म संवत् १६१२ में और मृत्यु संवत् १६७४ में हुई। यह ओड़छानरेश महाराज रामसिंह के

भाई इन्द्रजीतसिंह के आश्रित थे। वह इनका बहुत मान करते थे। यह संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। इसलिये स्वभावतः ही इनकी प्रवृत्ति दण्डी, रुय्यक आदि संस्कृत के आलङ्कारिकों के अनुसार हिन्दी में लक्षण ग्रन्थ लिखने की ओर हुई। इन्होंने (अलङ्कारशास्त्र) पर दो प्रसिद्ध ग्रन्थ लिखे, 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया'—पहला अलङ्कार पर और दूसरा रस पर। ये दोनों ग्रन्थ बहुत प्रौढ़ हैं। पाण्डित्य और आचार्यत्व की दृष्टि से केशव जी उच्च कोटि के हैं। हिन्दी में शास्त्रीय रीति से काव्यचर्चा का मार्ग खोलकर इन्होंने बहुत उपकार किया है।

सिद्धान्त—केशव जी की रचनाओं से उनके सिद्धान्त या मत के विषय में कुछ ज्ञात नहीं होता, परन्तु राम-चरित को लेकर 'रामचन्द्रिका' की रचना करने से इनकी मनोवृत्ति का झुकाव राम-भक्ति की ओर ही प्रतीत होता है।

कविता—इनका प्रधान काव्य 'रामचन्द्रिका' है। इसके अतिरिक्त 'कविप्रिया' और 'रसिकप्रिया' के उदाहरणों में भी इनकी मुक्तक-कविता का अद्भुत चमत्कार है, कल्पना और उक्तिवैचित्र्य का अच्छा प्रदर्शन है। 'रामचन्द्रिका' में प्रबन्ध काव्य की दृष्टि से इनको विशेष सफलता नहीं मिली। प्रबन्ध के योग्य संबन्ध-निर्वाह नहीं हो सका; वर्णन प्रकरणानुकूल नहीं बन पड़े, अलङ्कारों की अधिकता ने रस को तिरोहित कर दिया है; श्लेष आदि के कारण रचना क्लिष्ट हो गई है। संवाद यद्यपि सुन्दर हैं तथापि इनकी कविता में वह बात नहीं है जो भावुकता और सच्ची अन्तःप्रेरणा से आती है। कविता-सौन्दर्य के बाह्य साधनों का कृत्रिम चमत्कार ही इनकी रचना में अधिक पाया जाता है। संक्षेप में इनकी कविता मस्तिष्क की है, हृदय की नहीं।

प्रकृत—यहां 'रामचन्द्रिका' में से केवल दो प्रसङ्ग उद्धृत किये हैं—रावण-बाणासुर-संवाद और धनुर्भङ्ग। इनसे केशव जी की काव्यकला का कुछ परिचय प्राप्त हो जायगा।

सीता-स्वयंवर में रावण-बाणासुर-संवाद

घनाक्षरी छंद

पावक पवन, मणि पन्नग पतंग पितृ,
जेते जोतिवंत जग ज्योतिषिन गाये हैं।

असुर प्रसिद्ध सिद्ध तीरथ सहित सिन्धु,
केशव चराचर जे वेदन बताये हैं ॥
अजर अमर अज अंगी औ अनंगी सब,
बरणि सुनावै ऐसे कौने गुण गाये हैं ।
सीता के स्वयंवर को रूप अवलोकिवे को,
भूपन को रूप धरि विश्वरूप आये हैं ॥

सोरठा

कह्यौ विमति यह टेरि, सकल सभाहि सुनायकै ।
चहूँ ओर करि फेरि, सब ही को समुझायकै ॥

गीतिका

कोउ आजु राज समाज में बल शंभु को धनु कर्षिहै ।
पुनि श्रौण के परिमाण तानि सो चित्त में अति हर्षिहै ॥
वह राज होइ कि रंक केशवदास सो सुख पाइहै ।
नृपकन्यका यह तासु के उर पुष्पमालहि नाइहै ॥

दोहा

नेक शरासन आसनै तजै न केशवदास ।
उद्यम कै थाक्यो सबै राज समाज प्रकास ॥

मालती छंद

दिगपालन की भुवपालन की लोकपालन को किन मातु गई च्वै ।
कत भाँड़ भये उठि आसन तें कहि केशव शंभु सरासन को छ्वै ॥
अरु काहू चढ़ायो न काहू नवायो न काहू उठायो न आंगुरहू द्वै ।
कछु स्वारथ भो न भयो परमारथ आये है बीर चले बनिता ह्वै ॥

दोहा

सबही को समझो सबन बल विक्रम परिमाण ।
सभा मध्य ताही समय आये रावण बाण ॥

डिल्ला छंद

नर नारि सबै । भय भीत तबै ॥
अचरज्जु यहै । सब देखि कहै ॥

दोहा

है राकस दशशीश को दैयत बाहु हज़ार।
कियो सबन के चित्त रस अद्भुत भय संचार॥

विजोहा छंद

रावण—शंभु को दंड है। राजपुत्री कितै॥
टूक द्वै तीन कै। जाहुँ लंकाहिं लै॥
विमति—दसशिर आओ। धनुष उठाओ॥
कछु बल कीजै। जग जस लीजै॥

गीतिका छंद

बाण—दशकंठ रे शठ छाँड़ि दे हठ बार बार न बोलिये।
अब आजु राज समाज में बल साजु चित्त न डोलिये॥
गिरिराज ते गुरु जानिये सुरराज को धनु हाथ लै।
सुख पाय ताहि चढ़ायकै घर जाहि रे यश साथ लै॥

मंथना छंद

बाणी कही बान। कीन्ही न सो कान॥
अद्यापि आनी न। रे बदि कानीन॥

मालती छंद

बाण—जुपै जिय जोर। तजौ सब शोर॥
सरासन तोरि। लहौ सुख कोरि॥

दंडक छंद

रावण—वज्र को अखर्ब, गर्ब गंज्यो, जेहि पर्बतारि,
जीत्यौ है, सुपर्ब सर्ब भाजे, लै लै अंगना।
खंडित अखंड आशु कीन्हो है जलेश पाशु,
चंदन सी चन्द्रिका सों कीन्ही चंद बंदना।
दंडक में कीन्हीं कालदंड हू को मान खंड,
माना कीन्हीं काल ही की कालखंड खंडना।
केशव को दंड विषदंड ऐसो खंडै अब,
मेरे भुजदंडन की बड़ी है बिडंबना॥

तुरंगम छंद

बाण—बहुत बदन जाके। बिबिध बचन ताके॥
रावण—बहुभुज युत जाई। सबल कहिय साई॥

दोहा

अति असार भुज भार ही बली होहुगे बाण।
बाण—मम बाहुन को जगत में सुनु दसकंठ बिधान॥

सवैया

हौं जब ही जब पूजन जात पितापद पावन पाप प्रणासी।
देखि फिरौं तबहीं तब रावण सातो रसातल के जे बिलासी॥
लै अपने भुजदंड अखंड करौं छितिमंडल छत्र प्रभा सी।
जानै को केशव केतिक बार मैं सेस के सीसन दीन्ह उसासी॥

कमला छंद

रावण—तुम प्रबल जो हुते। भुजबलनि संयुते।
पितहि भुव ल्यावते। जगत यश पावते॥

तोमर छंद

बाण—पितु आनिये केहि ओक। दिय दच्छिणा सब लोक।
यह जानु रावन दीन। पितु ब्रह्म के रस लीन।

सवैया

कैटभ सो नरकासुर सो पल में मधु सो मुर सो जेइ मारयो।
लोक चतुर्दश रच्छक केशव पूरण वेद पुराण बिचारयो॥
श्रीकमलातनु-कुंकुमगंडन-पंडित देव अदेव निहारयो।
सो कर माँगन को बलि पै करतारहु को करतार पसारयो॥

दोहा

रावण—हमहिं तुमहिं नहिं बूझिये बिक्रमवाद अखंड।
अब ही यह कहि देहगो मदनकदन-कोदंड॥

संयुता छंद

बृत बाण रावण को सुन्यो। सिर राज मंडल में धुन्यो।
विमति—जगदीश अब रच्छा करो। विपरीत बात सबै हरो॥

दोहा

रावण बाण महाबली जानत सब संसार।
जो दोऊ धनु करषिहैं ताको कहा बिचार ॥

सवैया

बाण—केशव और ते और भई गति जानि न जाय कछू करतारी।
सूरन के मिलिबे कहँ आय मिल्यो दसकंठ सदा अविचारी ॥
बाढ़ि गयो बकवाद बृथा यह भूलि न भाट सुनावहि गारी।
शाप चढ़ाइहौं कीरति को यह राज़ करै तेरी राजकुमारी ॥

मधु छंद

रावण—मोकहँ रोकि सकै कहु को रे। युद्ध जुरे यम हू कर जोरे ॥
राज़सभा तिनुका करि लेखौं। देखि कै राज सुता धनु देखौं ॥

सवैया

बाण—बेगि कह्यौ तब रावण सों अब बेगि चढ़ाउ शरासन को।
बातैं बनाइ बनाइ कहा कहै छोड़ि दे आसन बासन को।
जातन है किधौं जानत नाहिन तू अपने मदनासन को।
ऐसेहि कैसे मनोरथ पूजत पूजे बिना नृपशासन को।

बंधु छंद

रावण—बाण न बात तुम्हैं कहि आवै।
बाण—सोई कहौं जिय तोहि जो भावै ?
रावण—का करिहौ हम योंहीं बरैंगे ?
बाण—हैहयराज करी सो करैंगे ॥

दंडक छंद

रावण—भौंर ज्यौं भँवत भूत बासुकी गणेशयुत,
मानो मकरंद बुंद माल गंगा जल की।
उड़त पराग पट, नाल सी विशाल बाहु,
कहा कहौं केशोदास शोभा पल पल की ॥
आयुध सघन सर्व मंगला समेत शव,
पर्वत उठाय गति कीन्ही है कमल की।

जानत सकल लोक लोकपाल दिगपाल,
जानत न बाण बात मेरे बाहुबल की ॥

मधुभार छंद

तजि कै सु-रारि। रिस चित्त मारि॥
दशकंठ आनि। धनु छुयो पानि॥

मधुभार छंद

विमति—तुम बलनिधान। धनु अति पुरान॥
पासजसु अंग। नहिं होहि भंग॥

सवैया

खंडित मान भयो सब को नृपमण्डल हारि रह्यो जगती को।
व्याकुल बाहु निराकुल बुद्धि थक्यो बल विक्रम लंकपती को।
कोटि उपाय किये कहि केशव केहूँ न छाँड़त भूमि रती को।
भूरि विभूति प्रभाव सुभावहि ज्यों न चलै चित योग-यती को।

पद्धटिका

धनु अति पुरान लंकेश जानि। यह बात बाण सों कही आनि॥
हौं पलक माहिं लैहौं चढ़ाय। कछु तुमहूँ तो देखो उठाय॥

दोहा

बाण—मेरे गुरु को धनुष यह सीता मेरी माय।
दुहू भाँति असमंजसै, बाण चले सुख पाय॥

मोदक छंद

काहू कहूँ सर आसर मारयो। आरत शब्द अकाश पुकारयो॥
रावण के वह कान परयो जब। छोड़ि स्वयंवर जात भयो तब॥

दोहा

जब जान्यो सब का भया सब ही बिधि व्रत भंग।
धनुष धरयो लै भवन में राजा जनक अनंग॥

(राम-लक्ष्मण के साथ विश्वामित्र का सीता-स्वयंवर में जाना, रामचन्द्र का धनुष तोड़ना और सीता का उन्हें वरमाला पहनाना)

सवैया

सातहु दीपन के अवनीपति हारि रहे जिय में जब जाने ।
बीसबिसे ब्रत भंग भयो सु कहौ अब केशव को धनु ताने ।।
शोक की आग लगी परिपूरण आइ गये घनश्याम बिहाने ।
जानकि के जनकादिक के सब फूलि उठे तरुपुण्य पुराने ।।

दोधक छंद

आय गये ऋषि राजहिं लीने । मुख्य सतानँद विप्र प्रवीने ।।
देखि दुऊ भये पायन लीने । आशिष शीरष बासु लै दीने ।।

सोरठा

जनक—जिन अपनो तन स्वर्ण, मेलि तपोमय अग्नि में ।
कीन्हों उत्तम वर्ण, तेई विश्वामित्र ये ।।

विजय छंद

श्रीराम-सब छत्रिन आदि दै काहू छुई न छुए बिजनादिक बात डगै ।
न घटै न बढ़ै निशि वासर केशव लोकन को तम तेज भगै ।।
भवभूषण भूषित होत नहीं मदमत्त गजादि मसी न लगै ।
जलहू थलहू परिपूरण श्रीनिमि के कुल अद्भुत जोति जगै ।।

विजय छंद

विश्वामित्र-आपने आपने ठौरनि तो भुवपाल सबै भुव पालैं सदाई ।
केवल नामहिं के भुवपाल कहावत हैं भुव पालि न जाई ।।
भूपन की तुम ही धरि देह विदेहन में कल कीरति गाई ।
केशव भूषण की भवि भूषण भू-तन ते तनया उपजाई ।।

दोहा

जनक—इहि विधि की चित चातुरी तिनको कहा अकत्थ ।।
लोकन की रचना रुचिर रचिवे को समरत्थ ।।

सवैया

लोकन की रचना रचिबे को जहीं परिपूरण बुद्धि बिचारी।
ह्वै गए केशवदास तहीं सब भूमि अकाश प्रकाशित भारी॥
शुद्ध सलाक समाज लसी अति रोषमयी दृग दीठि तिहारी।
होत भये तब सूर सुधाधर पावक शुभ्र सुधा रँगधारी॥

दोहा

केशव विश्वामित्र के रोषमयी दृग जानि।
संध्या सी तिहुँ लोक के किहिनि उपासी आनि॥

दोधक छंद

जनक – ये सुत कौन के शोभहिं साजे। सुंदर श्यामल गौर विराजे॥
जानत हौं जिय सोदर दोऊ। कै कमला बिमलापति कोऊ॥

चौपाई

विश्वामित्र—सुन्दर श्यामल राम सु जानो।
गौर सुलक्षण नाम बखानो।
आशिष देहु इन्हें सब कोऊ।
सूरज के कुलमंडन दोऊ॥

घनाक्षरी छंद

दानिन के शील पर दान के प्रहारी दिन,
दानवारि ज्यों निदान देखिये सुभाय के।
दीप दीप हू के अवनीपन के अवनीप,
पृथु सम केशोदास दास द्विज गाय के॥
आनँद के कंद सुरपालक से बालक ये,
परम प्रवीण साधु मन बच काय के।
देह धर्मधारी पै विदेहराज जू से राज,
राजत कुमार ऐसे दशरथ राय के॥

स्वागत छंद

राजराज दशरत्थ तनै जू। रामचन्द्र भुवचन्द्र बने जू॥
त्यों विदेह तुम हू अरु सीता। ज्यौं चकोर तनया शुभ गीता॥

तारक छंद

रघुनाथ शरासन चाहत देख्यो।
अति दुष्कर राज समाजनि लेख्यौ॥
जनक—ऋषि है वह मन्दिर माँझ, मँगाऊँ?
गहि ल्यावहिं हौं जन यूथ बुलाऊँ?

दोहा

विश्वामित्र—राम, हत्यो मारीच जेहि अरु ताड़का सुबाहु।
लक्ष्मण को यह धनुष दै तुम पिनाक को जाहु॥

त्रिभंगी छंद

जनक—सिगरे नर-नायक असुर-विनायक राक्षसपति हिय हारि गये।
काहू न उठायो थल न छोड़ायो टरयो न टारो भीत भये॥
इन राजकुमारनि अति सुकुमारनि लै आये हौ पैज करे।
ब्रत भंग हमारो भयो, तुम्हारो ऋषि तप तेज न जानि परे॥
विश्वामित्र—सुनि रामचन्द्र कुमार। धनु आनिये इकबार॥
पुनि वेगि याहि चढ़ाउ। जस लोक लोक बढ़ाउ॥

दोहा

ऋषिहि देखि हरषै हियो, राम देखि कुम्हिलाय।
धनुष देखि डरपै महा, चिन्ता चित्त डोलाय॥

सवैया

उत्तमगाथ सनाथ जबै धनु श्रीरघुनाथ जू हाथ कै लीनो।
निर्गुण ते गुणवंत कियो सुख केशव संत अनंतन दीनो॥
ऐंच्यो जहीं तब ही कियो संयुत तिच्छ कटाक्ष नराच नबीनो।
राजकुमार निहारि सनेह सों शंभु को साँचो शरासन कीनो॥

दोहा

सीता जू रघुनाथ को, अमल कमल की माल।
पहिराई जनु सवन की, हृदयावलि भूपाल॥

चित्रपदा छंद

सीय जहीं पहिराई। रामहिं माल सोहाई॥
दुंदुभि देव बजाये। फूल तहीं बरसाये॥

बिहारीलाल

परिचय—बिहारीलाल हिन्दी-साहित्य में रीतिकाल के सर्वश्रेष्ठ कवि माने जाते हैं। इनका जन्म संवत् १६६० के लगभग ग्वालियर के समीप बसुआ गोविंदपुर गाँव में हुआ और मृत्यु संवत् १७२० के लगभग वृन्दावन में हुई। यह माथुर चौबे थे। यह छोटी आयु में ही अपने पिता केशवराय के साथ बुंदेलखण्ड चले गये थे। वहां इन्द्रजीतसिंह के दरबार में कविवर केशवदास के साथ इनका परिचय हुआ। वहां रह कर इन्होंने महात्मा नरहरिदास और केशवदास से विद्याभ्यास भी किया। यहीं से इनके पाण्डित्य और कवित्व का सूत्रपात हुआ। इनका विवाह मथुरा में हुआ। यह अपने ससुराल में रहने लगे और इनके पिता वृन्दावन में। सं० १६७५ के लगभग महात्मा नरहरिदास वृन्दावन आए और बिहारीलाल की शाहजहाँ से भेंट करा दी। शाहजहाँ इन्हें आगरे ले गये, जहां आमेर के महाराज जयसिंह से इनका परिचय हुआ और यह जयपुर रहने लगे। इनमें कवित्व-शक्ति अद्भुत थी। महाराज जयसिंह के कहने से इन्होंने अपनी प्रसिद्ध 'सतसई' की रचना आरम्भ की और संवत् १७१६ (मतान्तर से सं० १७०४) में समाप्त करके महाराज को भेंट की। इसके अनन्तर ही इनकी पत्नी की मृत्यु हो गई, जिससे ये शोकातुर रहने लगे और आश्रयदाता महाराज जयसिंह की मृत्यु हो जाने पर संसार सें विरक्त होकर वृन्दावन में चले आये। वहां अपने गुरु नरहरिदास के पास रह कर भगवद्भजन करने लगे।

सिद्धान्त—इनकी सतसई के कुछ दोहों के आधार पर इनके सिद्धान्तों और विचारों का कुछ अनुमान किया जा सकता है। यद्यपि यह राम और कृष्ण में भेद बुद्धि नहीं रखते थे तो भी यह कृष्ण ही को अपना उपास्य मानते थे। सतसई के आरम्भ में मंगलाचरण कृष्ण-सम्बन्धी हैं, तथा भक्तिमय दोहे गोपाल और यदुपति को सम्बोधित कर कहे गये हैं। यह साम्प्रदायिक वाद-विवाद को पसन्द नहीं करते थे। इनके विचार में एक ब्रह्म ही सब मतों का उद्देश्य और सार है। यह भक्ति-मार्ग

में तिलक, छापा आदि बाह्याडम्बरों को व्यर्थ समझते थे। यह बहुत सूक्ष्मदर्शी विद्वान् थे।

कविता—इनका कविता-ग्रंथ केवल एक 'बिहारी-सतसई' ही है। इसी ने इन्हें अमर कर दिया है। बिहारी सतसई के अधिकांश दोहे शृङ्गार-नायिकाभेद-संबन्धी हैं, कुछ लोक-रीति तथा सामान्य-नीति के सबन्ध में चमत्कारपूर्ण ढंग से शिक्षा देते हैं, तथा कुछ ईश्वर-भक्ति, वैराग्य आदि के सम्बन्ध में हैं। प्रत्येक दोहा अपने अर्थ को पूर्णतया प्रकट करता है। मनोहर भाव, दृश्य आदि चलती परन्तु साहित्यिक-चमत्कार-पूर्ण व्रजभाषा में निबद्ध किये गये हैं। रसपरिपाक और भावव्यञ्जना अद्भुत हैं; अलङ्कार एक एक दोहे में पांच-पांच सात-सात हैं—एक से एक बढ़ कर। छोटे २ दोहों में बड़े बड़े भावों को बांधकर गागर में सागर भर दिया है। बिहारी-सतसई के अर्थ-गाम्भीर्य और महत्त्व का इसी से अनुमान किया जा सकता है कि इस पर ३० से अधिक टीकाएं लिखी जा चुकी हैं और शायद और भी लिखी जाएंगी। इसके दोहों पर कुंडलियाँ बाँधी गईं और इसका अनुवाद संस्कृत में भी किया गया। विरह-वर्णन में अतिशयोक्तियां कहीं २ अत्यन्त अस्वाभाविक हो गई हैं। कहीं २ पदों की तोड़-मरोड़ भी की गई है। फिर भी साहित्यिक रूप से देखने पर हिन्दी की शृङ्गारमय मुक्तक-कविता में बिहारी सब से बाजी मार ले गये हैं।

प्रकृत—यहां सतसई में से सामान्यनीति, उपदेश, ईश्वर-भक्ति आदि का प्रतिपादन करने वाले कुछ दोहे चुने गये हैं, जो बिहारी के काव्य-कौशल का बहुत कुछ परिचय दे सकते हैं।

प्रार्थना

मेरी भव बाधा हरौ, राधा नागरि सोय।
जा तन की झाईं परै, श्याम हरित दुति होय॥
सीस मुकुट कटि काछनी, कर मुरली उर माल।
यहि बानिक मो मन सदा, बसौ बिहारीलाल॥
मोहू दीजौ मोषु, जो अनेक पतितन दियो।

जो बाँधेहू तोषु, तौ बाँधौ अपने गुननि ॥
कीजै चित सोई तरे, जिहिं पतितनु के साथ।
मेरे गुन औगुन गननु, गनौ न गोपीनाथ ॥
हरि कीजति बिनती यहै, तुम सौं बार हजार।
जिहिं तिहिं भाँति डरयौ रह्यौ परयौ रहौं दरबार ॥

श्रीकृष्ण

सोहत ओढ़े पीत पट, स्याम सलोने गात।
मनो नीलमणि सैल पर, आतप परयो प्रभात ॥
अधर धरत हरि के परत, ओंठ डीठ पट जोति।
हरित बाँस की बाँसुरी, इन्द्र धनुष सों होति ॥
मोर-मुकुट की चंद्रिकनु, यौं राजत नँदनंद।
मनु ससिसेखर की अकस, किय सेखर सत चंद ॥

ग्रीष्म

प्यासे दुपहर जेठ के, थके सबै जल सोधि।
मरु-धर पाय मतीर हूँ, मारू कहत पयोधि ॥
विषम वृषादित की तृषा, जिये मतीरन सोधि।
अमित अपार अगाध जल, मारौ मूढ़ पयोधि ॥

अन्योक्तियाँ

नहिं पावसु ऋतुराजु यह, तजि तरवर चित भूल।
अपतु भएं बिनु पाइहै क्यों नवदल फल फूल ॥
बहकि बड़ाई आपनी, कत राचत मति-भूल।
बिन मधु मधुकर के हिये, गड़े न गुड़हर फूल ॥
को छूट्यौ इहिं जाल परि, कत कुरङ्ग अकुलात।
ज्यौं ज्यौं सुरझि भज्यौ चहत, त्यौं त्यौं उरझत जात ॥
चले जाहु ह्याँ को करे, हाथिन को ब्यौपार।
नहिं जानत इहिं पुर बसैं, धोबी औंड कुम्हार ॥
आत जात बितु होतु है, ज्यौं जिय मैं संतोषु।

होत होत जौ होइ तौ, होइ घरी मैं मोषु ॥
कर लै सूँघि सराहि कै, सबै रहे गहि मौन।
गंधी गंध गुलाब को, गंवई गाहक कौन ॥
करि फुलेल को आचमन, मीठो कहत सराहि!
चुप रहिरे गंधी सुघर, अतर दिखावत काहि ॥
जिन दिन देखे वे कुसुम, गई सो बीत बहार।
अब अलि रही गुलाब में, अपत कँटीली डार ॥
यही आस अटक्यौ रहै, अलि गुलाब के मूल।
ह्वै हैं फेरि बसन्त ऋतु, इन डारनि वे फूल ॥
पट पाँखैं भख काँकरे, सफर परेई संग।
सुखी परेवा जगत में, एकै तुही विहंग ॥
दिन दस आदर पाइ कै, करिलै आप बखान।
जौ लगि काग सराध-पख, तौ लगि तो सनमान ॥
स्वारथ सुकृत न स्रम बृथा, देखि विहङ्ग विचारि।
बाज पराये पानि परि, तू पंछीहि न मारि ॥

लोक-रीति और सामान्य-नीति

चटक न छाँड़त घटतहू, सज्जन नेह गँभीर।
फीको परै न बरु घटै, रँग्यौ चोल रँग चीर ॥
को कहि सकै बड़ेनि सों, लखें बड़ी यौ भूल।
दीने दई गुलाब की, इन डारनि वे फूल ॥
बढ़त बढ़त सम्पति-सलिल, मन सरोज बढ़ि जाय।
घटत घटत पुनि पुनि घटै, बरु समूल कुम्हिलाय ॥
कोटि जतन कोऊ करै, परै न प्रकृतिहिं बीच।
नल बल जल ऊँचे चढ़ै, अन्त नीच को नीच ॥
कैसे छोटे नरनि तें, सरत बड़नि के काम।
मढ़थो दमामो जात क्यों, लै चूहे के चाम ॥
मीत न प्रीति गलीति ह्वै, जो धरिये धन जोरि।

खाये खरचे जो जुरै, तौ जोरिये करोरि ॥
अरे परेखो को करै, तुही बिलोकि बिचारि।
किहिं नर किहिं सर राखियो, खरे बढ़े परिवारि ॥
नर की अरु नल-नीर की, एकै गति करि जोइ।
जेतो नीचे ह्वै चलै, तेतो ऊँचो होइ ॥
बड़े न हूजै गुननि बिन, बिरद बड़ाई पाय।
कहत धतूरे सों कनक, गहनो गढ़ो न जाय ॥
सोहतु संगु समान सौं, यहै कहै सबु लोगु।
पान पीक ओठनु बनै, काजर नैननु जोगु ।।
पाइल पाइ लगी रहै, लगौ अमोलिक लाल।
भोडर हूँ की भासिहै, बेंदी भामिनि भाल ॥
नीच हियैं हुलसे रहैं, गहे गेंद के पोत।
ज्यौं ज्यौं माथैं मारियत, त्यौं त्यौं ऊँचे होत ॥
बुरौ बुराई जौ तजै, तौ चितु खरौ डरातु।
ज्यौं निकलंकु मयंकु लखि, गनै लोक उतपातु ॥
ओछे बड़े न ह्वै सकैं, लगि सतरौहैं बैन।
दीरघ होहिं न नेकहू, फारि निहारे नैन ॥
अति अगाध अति औथरौ, नदी कूप सर बाय।
सो ताको सागर जहाँ, जा की प्यास बुझाय ॥
दुसह दुराज प्रजान कों, क्यों न करैं अति दंद।
अधिक अंधेरो जग करत, मिलि मावस रवि चंद ॥
घर घर डोलत दीन ह्वै, जन जन जाँचत जाइ।
दिये लोभ-चसमा चखनि, लघु पुनि बड़ो लखाइ ॥
बसै बुराई जासु तन, ताही को सनमान।
भलो भलो कहि छोड़िये, खोटे ग्रह जप दान ॥
कहै यहै श्रुति सुमृति सों, यहै सयाने लोग।
तीन दबावत निसँक ही, राजा पातक रोग ॥
सीतलता रु सुगंध की, घटै न महिमा मूर।

पीनसवारे जो तज्यो, सोरा जानि कपूर ॥
समय समय सुन्दर सबै, रूप कुरूप न कोइ ।
मन की रुचि जेती जितै, तितै तिती रुचि होइ ॥
कनक कनक तें सौगुनी, मादकता अधिकाय ।
वा खाये बौराइ जग, या पाये बौराय ॥

वेदान्त

यह जग काँचो काँच सों, मैं समुझ्यो निरधार ।
प्रतिबिम्बित लखियत जहाँ, एकै रूप अपार ॥

उपदेश

जप माला छापा तिलक, सरै न एकौ काम ।
मन काँचे नाचे वृथा, साँचे राचे राम ॥
भजन कह्यो तातें भज्यो, भज्यो न एकौ बार ।
दूरि भजन जातें कह्यो, सो तैं भज्यो गँवार ॥
पतवारी माया पकरि, और न कछू उपाय ।
तरि संसार पयोधि को, हरि नामैं करि नाव ॥
तौ लगि या मन सदन में, हरि आवहिं किहिं बाट ।
निपट बिकट जब लगि जुटे, खुले न कपट कपाट ॥
दीरघ साँस न लेहि दुख, सुख साईंहिं न भूलि ।
दई दई क्यौं करतु है, दई दई सु कबूलि ॥
यह बरिया नहिं और की, तू करिया वह सोधि ।
पाहन नाव चढ़ाइ जिहिं, कीने पार पयोधि ॥

भक्त के व्यङ्ग्य

दूरि भजत प्रभु पीठि दै, गुन-विस्तारन काल ।
प्रगटत निर्गुन निकट रहि, चंग रंग गोपाल ॥
कौन भाँति रहिहै बिरद, अब देखबी मुरारि ।
बीधे मो सों आय कै, गीधे गीधहिं तारि ॥
थोरे ई गुन रीझते, बिसराई वह बानि ।

तुमहूँ कान्ह मनो भये, आज कालिह के दानि ॥
कब को टेरत दीन ह्वै, होत न स्याम सहाय।
तुमहूँ लागी जगत गुरु, जय नायक जग-वाय ॥
बंधु भए का दीन के, को तारयौ रघुराइ।
तूठे तूठे फिरत हौ, झूठे बिरद कहाइ ॥
ज्यौं ह्वै हौं त्यौं होऊँगौ, हौं हरि अपनी चाल।
हठु न करौ अति कठिनु है, मो तारिबौ गुपाल ॥

\+ + +

कोऊ कोटिक संग्रहौ, कोऊ लाख हजार।
मो संपति यदुपति सदा, विपति विदारनहार ॥



भूषण

परिचय—भूषण जी रीतिकाल की शृङ्गार-पद्धति को त्याग कर वीरता के वर्णन से वाणी को विभूषित करने वाले अत्यन्त लोकप्रिय कवि हुए हैं। इनका जन्म संवत् १६७० में और परलोकवास संवत् १७७२ में माना जाता है। यह हिन्दी के प्रसिद्ध कवि चिन्तामणि और मतिराम के भाई थे। इनकी जन्म-भूमि कानपुर जिले में तिकवाँपुर गाँव था। चित्रकूट के सोलंकी राजा रुद्र ने इन्हें 'कवि-भूषण' की उपाधि दी थी, जिससे यह भूषण नाम से ही प्रसिद्ध हो गये और इनका असली नाम लुप्त हो गया। यह अनेक राजाओं के यहां रहे और सब से संमान पाया। अन्त में इनके मन के अनुकूल आश्रयदाता छत्रपति शिवाजी मिले और प्रधानतया वही इनकी वीर-कविता के नायक हुए। पन्ना के महाराज छत्रसाल भी इन्हें बहुत मानते थे। कहते हैं, एक बार प्रसन्न हो उन्होंने भूषण जी की पालकी में अपना कंधा लगाया था। शिवाजी तो इनकी कविता पर इतने लट्टू थे कि एक एक छंद पर उन्होंने इन्हें लाखों रुपये दिये थे। कविता द्वारा जितना संमान और धन भूषण जी को प्राप्त हुआ उतना हिन्दी के अन्य किसी कवि को नहीं, और वास्तव में यह उसके योग्य भी थे।

सिद्धान्त—भूषण जी वीरभाव-संपन्न व्यक्ति थे। स्वतन्त्रता-प्रेम और आत्मभिमान ही इनके हृदय की मुख्य भावनाएँ थीं। इनकी कृतियों से यही कुछ प्रकट होता है, इनके विशेष सिद्धान्त या मत का कुछ पता नहीं चलता। शिवराज-भूषण के आरम्भ में इन्होंने ब्रह्मस्वरूप गणेश जी और दुर्गा की वन्दना की है। गणेश जी की वन्दना प्रथा-प्राप्त है और शक्ति की वन्दना वीर-कवि के लिये स्वाभाविक है। यह गीता के "परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम्। धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे॥" इस वाक्य पर विश्वास रखते हुए शिवाजी को ईश्वरावतार मानते थे—

"दसरथ जू के राम भे, वसुदेव के गोपाल।
सोई प्रगटे साहि के, श्रीशिवराज भुआल॥"

[शिवराज-भूषण पद्य ११]

कविता—भूषण जी के तीन ग्रन्थ उपलब्ध होते हैं—शिवराज-भूषण, शिवा-बावनी और छत्रसाल दशक। शिवराज भूषण रीति-ग्रन्थ है। इसका विषय अलंकार निरूपण है, परन्तु उदाहरण सब शिवा जी की वीरता, कीर्ति आदि की प्रशंसा में लिखे गये हैं। उस समय रीति-ग्रंथ लिखने की प्रथा सी हो गई थी। भूषण जी भी रीति-ग्रंथ लिखकर आचार्यत्व प्राप्त करने के लोभ को संवरण नहीं कर सके, परन्तु इन्हें उसमें सफलता नहीं मिली। वास्तव में यह प्रकृति से कवि थे, आचार्य नहीं। यदि शिवराज-भूषण में से अलंकार-लक्षणों के दोहों को निकाल दिया जाय तो कोई हानि नहीं प्रतीत होती, प्रत्युत वैसा करने पर वह एक विशुद्ध कीर्ति-काव्य बन जाता है, जिसमें भूषण जी को पूरी सफलता प्राप्त हुई है : यह स्वतन्त्रता-प्रिय व्यक्ति थे, परतन्त्रता इन्हें चुभती थी; वीररस का आवेश इनमें स्वाभाविक था। इसी लिये ओज इनकी कविता का प्रधान गुण है।

विलासिता के गढ़े में गिरती जा रही, पराधीन जाति में जातीय तथा राष्ट्रीय भावों का जीवन फूँकना ही भूषण जी की कविता का उद्देश्य है। इनका शिवाजी और छत्रसाल का वर्णन उस समय की प्रथा के अनुसार खुशामदी वर्णन नहीं है, किन्तु उसके द्वारा उन्होंने उन हिन्दुत्व के संरक्षक वीरों के प्रति तत्कालीन हिन्दू जनता के जो आदर, श्रद्धा आदि के भाव थे,

उन्हीं का प्रकाशन किया है। इसी कारण जनता ने उनकी कविता का इतना समादर किया। भूषण जी एक उच्च कोटि के जातीय प्रतिनिधि कवि हैं। उस समय अन्य कवियों ने अपने २ आश्रयदाताओं की प्रशंसा में न जाने कितनी खुशामदी कविताएँ लिखी होंगी, आज किसी का कहीं नाम भी नहीं सुनाई देता, परन्तु भूषण जी की कविता अमर होगई है।

भूषण जी की भाषा व्याकरण की दृष्टि से अव्यवस्थित है। कहीं २ शब्दों की बुरी तरह से तोड़-मरोड़ की गई है। फारसी शब्दों का भी काफ़ी प्रयोग किया गया है। व्रजभाषा के अतिरिक्त बुन्देलखण्डी के शब्द भी प्रयुक्त हुए हैं। कहीं २ खड़ी बोली भी देखने में आती है।

प्रकृत—यहां थोड़े से गद्य उद्धृत किये गये हैं। जिनमें शिवाजी की वीरता, पराक्रम तथा उदारता का वर्णन है। इनसे भूषण जी की कवि-की शैली, प्रवाह और ओज का परिचय प्राप्त हो जाएगा।

(भवानी-स्तुति)

छप्पय

जै जयंति जै आदि सकति जै कालि कपर्दिनि।
जै मधुकैटभ-छलनि देवि जै महिष-विमर्दिनि॥
जै चमुंड जै चंड-मुंड-भंडासुर-खंडिनि।
जै सुरक्त जै रक्तबीज-बिड्डाल-विहंडिनि॥
जै जै निसुंभ-सुंभद्दलनि, भनि भूषन जै जै भननि।
सरजा समत्थ शिवराज कहँ, देहि विजै जै जग-जननि॥

(शाह जी की उदारता)

कवित्त-मनहरण

एते हाथी दीन्हें माल मकरंदजू के नंद,
जेते गनि सकति बिरंचि हू की न तिया।
भूषन भनत जाकी साहिबी सभा के देखे,
लागैं सब और छितिपाल छिति में छिया॥

साहस अपार, हिंदुवान को अधार धीर,
सकल सिसौदिया सपूत कुल को दिया।
जाहिर जहान भयो, साहिजू खुमान वीर,
साहिन को सरन, सिपाहिन को तकिया ॥

(शिवा जी का प्रताप और पराक्रम)

मालती सवैया

पावकतुल्य अमीतन को भयो, मीतन को भयो धाम सुधा को।
आनन्द भो गहिरो समुदै कुमुदावलि तारन को बहुधा को ॥
भूतल माँहि बली सिवराज भो भूषण भाखत शत्रु मुधा को।
वंदन तेज त्यों चंदन कीरति सोंधे सिंगार बधू वसुधा को ॥

मालती सवैया

कुन्द कहा, पय वृन्द कहा, अरु चन्द कहा, सरजा जस आगे ?
भूषन भानु कसानु कहाऽब खुमान प्रताप महीतल पागे ?
राम कहा, द्विज राम कहा, बलराम कहा, रन में अनुरागे ?
बाज कह, मृगराज कहा, अति साहस में सिवराज के आगे ?

मालती सवैया

यों सिवराज को राज अडोल कियो सिव जोऽब कहा ध्रुव धू है।
कामना-दानि खुमान लखे न कछू सुर-रूख देवगऊ है ?
भूषन भूपन में कुल-भूषन भौंसिला भूप धरे सब भू है।
मेरु कछू न कछू दिगदन्ति न कुण्डनि कोल कछू न कछू है ?

(शिवा जी की शत्रुओं पर चढ़ाई)

कवित्त-मनहरण

साजि चतुरंग बीर रंग में तुरंग चढ़ि,
सरजा सिवा जी जंग जीतन चलत है।
भूषण भनत नाद विहद नगारन के,
नदी-नद मद गैबरन के रलत है ॥
ऐल-फैल खैल-भैल खलक में गैल-गैल,
गजन की ठेल-पेल सैल उसलत है।

तारा सो तरनि धूरि धारा में लगत जिमि,
धारा पर पारा पारावार यों हलत है ॥

कवित्त-मनहरण

सिंहल के सिंहसम रन सरजा की हाक,
सुनि चौंक चलैं सब धाइ पाट सादा के।
भूषन भनत भुवपाल दुरे द्राविड़ के,
ऐल-फैल गैल-गैल भूले उनमादा के ॥
उछलि उछलि ऊँचे सिंह गिरे लंक माहिं,
बूड़ि गए महल विभीषन के दादा के।
महि हालै, मेरु हालै, अलका कुबेर हालै,
जा दिन नगारे बाजे सिव साहजादा के ॥

कवित्त-मनहरण

प्रेतिनी पिसाचऽरु निसाचर निसाचरिहू,
मिलि मिलि आपुस में गावत बधाई है।
भैरों भूत प्रेत भूरि भूधर भयंकर से,
जुत्थ जुत्थ जोगिनी जमात जुरि आई है ॥
किलकि किलकि कै कुतूहल करति काली,
डिम डिम डमरू दिगंबर बजाई है।
सिबा पूछैं सिव सों समाज आजु कहाँ चली,
काहू पै सिवा नरेश भृकुटी चढ़ाई है ॥

कवित्त-मनहरण

छूटत कमान अरु गोली तीर बानन के,
मुसकिल होत मुरचानहूँ की ओट में।
ताहि समै सिवराज हुकुम कै हल्ला कियो,
दावा बाँधि परा हल्ला बीरबर जोट में ॥
भूषन भनत तेरी हिम्मति कहाँ लौं कहौं,
किम्मति यहाँ लगि है जाकी भट झोट में।
ताव दै दै मूछन कँगूरन पै पाँव दै दै,
अरि मुख घाव दै दै कूदे परैं कोट में ॥

(शिवा जी की उदारता और दान)

मालती सवैया

साहि तनै सरजा तव द्वार प्रतिच्छन दान की दुंदुभि बाजै।
भूषन भिच्छुक भीरन को अति भोजहु तें बढ़ि मौजनि साजै॥
राजन को गन, राजन! को गनै? साहिन में न इती छवि छाजै।
आजु गरीबनेवाज मही पर तो सो तुही सिवराज बिराजै॥

मालती सवैया

देत तुरीगन गीत सुने बिनु देत करीगन गीत सुनाए।
भूषन भावत भूप न आन जहान खुमान की कीरति गाए॥
मंगन को भुवपाल घने पै निहाल करै सिवराज रिझाए।
आन ऋतैं बरसे सरसैं, उमड़ैं नदियाँ ऋतु पावस पाए॥

कवित्त मनहरण

गुननि सों इनहूँ को बाँधि लाइयतु पुनि,
गुननि सों उनहूँ को बाँधि लाइयतु है।
पाय गहे इनहूँ को रोज ध्याइयतु है,
पाय गहे उनहूँ को रोज ध्याइयतु है॥
भूषन भनत महाराज सिवराज तेरो,
रस, रोष एक भाँति ही को पाइयतु है।
दोहा ई कहे तें कविलोग ज्याइयतु अरु,
दोहाई कहे तें अरि लोग ज्याइयतु है॥

कवित्त-मनहरण

तुम सिवराज ब्रजराज अवतार आजु,
तुम ही जगत काज पोषत भरत हौ।
तुम्हैं छोड़ि यातें काहि बिनती सुनाऊँ मैं,
तुम्हारे गुन गाऊँ, तुम ढोले क्यों परत हौ॥
भूषन भनत वाहि कुल में नयो गुनाह,
नाहक समुझि यह चित में धरत हौ।
और बाँभनन देखि करत सुदामा सुधि,
मोहि देखि काहे सुधि भृगु की करत हौ॥

(शिवा जी का यश)

कवित्त-मनहरण

चंदन में नाग, मद भरयो इंद्रनाग,
विष भरयो सेस नाग, कहै उपमा अवस को।
भोर ठहरात न, कपूर बहरात, मेघ,
सरद उड़ात बात लागे दिसि दस को॥
शंभु नीलग्रीव, भौंर पुंडरीक ही बसत,
सरजा सिवाजी सन भूषन सरस को।
छीरधि मैं पंक, कलानिधि मैं कलंक याते,
रूप एक टंक ए लहैं न तव जस को॥

कवित्त-मनहरण

आजु यहि समै महाराज सिवराज तुही,
जगदेव जनक जजाति अम्बरीक सो।
भूषन भनत तेरे दान-जल-जलधि में,
गुनिन को दारिद गयो बहि खरीक सो॥
चंदकर किंजलक, चाँदनी पराग, उड़-
बृंद मकरंद बुंद पुंज के सरीक सो।
कंद सम कयलास, नाक-गंग नाल तेरे,
जस पुंडरीक को अकास चंचरीक सो॥

(दान परक प्रेरणा)

कवित्त-मनहरण

देह देह देह फिर पाइए न ऐसी देह,
जौन तौन जो न जानै कौन जौन आइबो।
जेते मनि-मानिक हैं तेते मन मानि कहैं,
धराई मैं धरे ते तौ धराई धराइबो॥
एक भूख राखै भूख राखै मत भूषन की,
यही भूख राखै भूप भूषन बनाइबो।
गगन के गौन जम गिनन न दैहैं नग,
नगन चलैगौ साथ नग न चलाइबो॥

पद्माकर भट्ट

परिचय—रीति-कविता की परम्परा में सर्वप्रियता और प्रसिद्धि में बिहारी के बाद पद्माकर भट्ट का ही नाम है। इनका जन्म संवत् १८१० में बाँदा में हुआ और मृत्यु संवत् १८६० में कानपुर में गङ्गातट पर हुई। यह तैलङ्ग ब्राह्मण थे। इनके पिता मोहनलाल भट्ट पूर्ण विद्वान् और उत्कृष्ट कवि होने के अतिरिक्त मन्त्र-शास्त्र के पारदर्शी थे। इन कारणों से अनेक राजधानियों में उनका संमान था। पद्माकर जी में पिता के सब गुण उतर आए—वैसी ही विद्वता, वैसी ही मन्त्रशास्त्र की सिद्धि, और कविता में तो यह अपनी निराली शैली में रीतिकाल के प्रायः सभी कवियों से बाजी ले गये। इनका दतिया, ग्वालियर, बूँदी, जयपुर आदि बड़े २ राजदरबारों में आना जाना था। इन्होंने सागर-नरेश रघुनाथराव अप्पा साहब की प्रशंसा में एक कवित्त पढ़ा था, उस पर मुग्ध होकर उन्होंने इन्हें एक लाख रुपया दिया था। इसी से वह कवित्त इनके वंशजों में 'लाखिया' नाम से प्रसिद्ध है। वह यह है:—

"संपति सुमेर की कुबेर की जु पावै ताहि, तुरत लुटावत विलंब उर धारै ना।
कहै 'पदमाकर' सुहेम हय हाथिन के, हलके हजारन के बितरि बिचारै ना॥
गंज-गज-बकस महीप रघुनाथ राव, याहि गज धोखे कहूं काहू देइ डारै ना।
याहि डर गिरिजा गजानन को गोइ रही, गिरि ते गरे ते निज गोद ते उतारै ना॥"

यह राजसी ठाठबाट से रहते थे; जब कहीं जाते तो लाव लश्कर के साथ जाते। किसी बात की कमी नहीं थी। परन्तु इनके भाग्य में स्थिरता और शान्ति नहीं थी। सारी उमर एक राजधानी से दूसरी राजधानी में भटकते रहे। इस बात को इन्होंने स्वयं भी अनुभव किया था; इनकी अन्तिम रचनाओं में ऐसे संकेत मिलते हैं। पिछली आयु यह प्रायः रोगी रहा करते थे। उसी अवस्था में इन्होंने वैराग्य और भक्ति से पूर्ण 'प्रबोधपचासा' रचा। अनन्तर अन्त-समय समीप जान गङ्गातट पर देह त्याग की इच्छा से यह कानपुर चले आए और जीवन के शेष वर्ष वहीं बिताए। इनकी प्रसिद्ध 'गङ्गालहरी' इसी समय की रचना है।

सिद्धान्त—पद्माकर जी ने शृङ्गार के वर्णन में श्रीकृष्ण और राधा पर अनूठे पद्य कहे हैं, तथापि वैसा सूरदास के समान भक्तिभाव की प्रेरणा से नहीं किया किन्तु श्रीकृष्ण और राधा को नायक-नायिका मानकर शृङ्गार-वर्णन की प्रथा के अनुसार किया है। इन्होंने प्रचलित भावना के अनुसार श्रीराम को विष्णु का अवतार मानकर उन्हीं के प्रति अपने भक्ति उद्गार कहे हैं। इनकी वृत्ति सांप्रदायिक नहीं थी, यह लोक-दृष्टि से चलते थे। उस समय लोक में जिन २ देवताओं की वंदना-पूजा का प्रचार था; इन्होंने उनमें से यथाप्रसङ्ग कई देवताओं का वर्णन किया है। उससे सब देवताओं के प्रति इनकी एक-सी मनोवृत्ति ज्ञात होती है। इन्होंने अपने इष्टदेव श्रीराम का और देवताओं से उत्कर्ष दिखाने का प्रयत्न नहीं किया। पद्माकर जी का मत है कि जप, तप आदि स्वर्ग आदि की प्राप्ति के साधन चाहे हों, पर भगवत्प्राप्ति के लिये भगवान् के प्रति प्रेम ही आवश्यक है—

"धारा धाये फिरत वृथा पै प्रेम-नीरधि में,
पाये जिन राम तिन प्रेम ही सों पाये हैं॥"

कविता—पद्माकर जी की कविता जगद्विनोद, पद्माभरण, हिम्मतबहादुरविरुदावली, प्रबोधपचासा और गङ्गालहरी में अपने विविध रूपों और विशेषताओं का प्रदर्शन कर रही है। इनमें से पहले दो रीति-ग्रन्थ हैं, जिनका विषय क्रम से नायिका-भेद रस-भेद-निरूपण और अलङ्कार-निरूपण है। तीसरे में वीररस का फड़कता हुआ वर्णन है। चौथे पाँचवें में वैराग्य और भक्ति की प्रधानता है। इनकी कविता में भाषा का परिमार्जित रूप, मुहावरों और लोकोक्तियों का चमत्कार तथा अनुप्रासों की बहार हृदय को मुग्ध कर देती है। चित्रण की विशदता, भावों की रमणीयता, सूझ की सूक्ष्मता, कल्पना का अनूठापन और कहने के ढंग का निरालापन बिहारी को छोड़कर हिन्दी के अन्य किसी कवि की कविता में इतने व्यापक रूप से नहीं पाया जाता। भाषा की दृष्टि से तो पद्माकर जी बिहारी को भी पीछे छोड़ गये हैं। केवल कुछ ही स्थल ऐसे हैं, जहाँ अनुप्रास के पीछे पड़कर इन्होंने अर्थ को दुरूह बना दिया है और रचना में भद्दापन पैदा कर दिया है। इनकी कविता का प्रवाह बरसाती नदी के समान है। इन्होंने जो कुछ लिखा

है, भावप्रणवता से लिखा है। इसीलिये इनकी कविता चमत्कारों का भण्डार बन गई है।

प्रकृत—यहाँ 'प्रबोध-पचासा' और 'गङ्गालहरी' से कुछ पद्य उद्धृत किये हैं, जो पद्माकर जी के काव्य-कौशल का परिचय कराने के लिये पर्याप्त हैं।

(प्रबोध-पचासा से)

कवित्त

देव नर किन्नर कितेक गुन गावत, पै
पावत न पार जो अनंत गुनपूरे को।
कहै 'पदमाकर' सु-गाल के बजावत ही,
काज करि देत जन-जाचक जरूरे को॥
चंद की छटान-जुत पन्नग-फटान-जुत,
मुकुट बिराजै जटाजूटन के जूरे को।
देखौ त्रिपुरारि की उदारता अपार जहाँ,
पैये फल चारि फूल एक दै धतूरे को॥

औगुन अनंत खरदूषन-लौं दोषवंत,
तुच्छ त्रिसिरा-लौं जा को एक हू न जस है।
कहै 'पदमाकर' कबंध-लौं मदंध, महा-
पापी हौं मरीच-लौं, न दाया को दरस है॥
मंथरा लौं मंथर, कुपंथी पंथ-पाहन-लौं,
बालि हू लौं बिषई न जान्यौं और रस है।
ब्याध हू लौं बधिक बिराध-लौं बिरोधी राम,
एते पै न तारौ तौ हमारौ कहा बस है॥

ब्याध हू तें बिहद असाधु हौं अजामिल तें,
ग्राह तें गुनाही कहौ तिन में गनाओगे।
स्यौरी हौं न सुद्र हौं न केवट कहूँ को त्यौं न
गौतमी तिया हौं जा पै पग धरि आओगे॥

राम सौं कहत 'पदमाकर' पुकारि, तुम
मेरे महापापन को पार हू न पाओगे।
सीता-सी सती को तज्यो झूठोई कलंक सुनि,
साँचोई कलंकी ताहि कैसे अपनाओगे॥

जोग जप संध्या साधु-साधन सबैई तजे,
कीन्हे अपराध ते अगाध मनभावते।
तेते तजि औगुन अनंत 'पदमाकर' तौ,
कौन गुन लै कै महाराजहि रिझावते॥
जैसे अब तैसे पै तिहारे बड़े काम के हैं,
नाहीं तौ न एते बैन कबहूँ सुनावते।
पावते न मो-सो जो पै अधम कहूँ, तो राम
कैसे तुम अधम-उधारन कहावते॥

प्रलै के पयोनिधि-लौं लहरैं उठन लागीं,
लहरा लग्यो त्यों होन पौन पुरवैया को।
भीर भरी झाँझरी बिलोकि मँझधार परी,
धीर न धरात 'पदमाकर' खेवैया को॥
कहा वार कहा पार जानी है न जात कछु,
दूसरो दिखात न रखैया और नैया को।
बहन न पैहै घेरि घाटहि लगैहै, ऐसो
अमित भरोसो मोहि मेरे रघुरैया को॥

जाट हू धना के सदना के सुद्ध साथी भये,
हाथी हू उबारत न बार मन लाये हैं।
कहै 'पदमाकर' कहे न परैं तेते जग,
जेते कपि-रिच्छन के बिरद बढ़ाये हैं॥
साधन के हेत पद पाल्यो प्रह्लाद हू को,
याद करौ जाय सेबरी के बेर खाये हैं।
राखत हैं राखैंगे रखैया रघुनाथ जन,
आपने की बात सदा राखतेई आये हैं॥

काहे को बघंबर को ओढ़ि करौ आडंबर,
काहे को दिगंबर ह्वै दूब खाय रहिये।
कहै 'पद्माकर' त्यों काय के कलेस-हित,
सीकर सभीत सीत बात ताप सहिये॥
काहे को जपौगे जप काहे को तपौगे तप,
काहे को प्रपंच पंच पावक में दहिये।
रैन-दिन आठो जाम राम राम राम राम,
सीताराम सीताराम सीताराम कहिये॥

सवैया

और सबै सँग सापनो है, जग आपनो एक हितू रघुराया।
ताहि न भूलि हू भूलियो तू, 'पद्माकर' पेलनो पेख पराया॥
नैन मुँदे पै जहाँ को तहाँ जकि-सी रहि जाति जमाति औ जाया।
माया चलाय कहौ क्यों चलै, चलै आपने संग न आपनी काया॥

जैसे जरा के जरा कहि जागत, जात हू में न रहै छबि छाजी।
ज्यों कलिकाल के ब्यालन तें 'पदमाकर' भक्ति फिरै भ्रमि भाजी॥
त्यों मुख राम के नाम के लागत, यों उठि जात कुपातक पाजी।
ज्यों छिन एक ही में छुटि जात है, आतस के लगे आतसबाजी॥

पातकीपावन हौ तुम राम, रहैं हम पातक में मदमाते।
दीन के बंधु दयाल इकै तुम हौ, हम दीनदसान हीं पाते॥
पालक हौ तुम विप्रन के, हम हूँ 'पदमाकर' बिप्र सुहाते।
या तें रटौं न हटौं प्रभु-पास सें, हैं तुम तें हम तें बहु नाते॥

पापी अजामिल पार कियो, जेहि नाम लियो सुत ही को नरायन।
त्यों 'पदमाकर' लात लगे परे बिप्र हू के पग चौगुने चायन॥
को अस दीनदयाल भयो दसरत्थ के लाल-से सूधे सुभायन।
दौरे गयंद उबारिबे को, प्रभु बाहनै छोड़ि उबाहनै पायन॥

(गंगा-लहरी से)

कूरम पै कोल, कोल हू पै सेष-कुंडली है,
कुंडली पै फबी फैल सुफन-हजार की।

कहै 'पद्माकर' त्यों फन पै फबी है भूमि,
भूमि पै फबी है थिति रजत-पहार की ॥
रजत-पहार पर संभु सुरनायक हैं,
संभु पर जोति जटाजूट है अपार की।
संभु-जटाजूटन पै चंद की छुटी है छटा,
चंद की छटान पै छटा है गंग-धार की ॥

सहज सुभाय आय एक महापातकी की,
गंगा मैया धोई तू तौ देह निज आप ह्वै।
कहै 'पद्माकर' सु महिमा मही में भई,
महादेव देवन में बाढ़ी थिर थाप ह्वै ॥
जकि-से रहे हैं जम, थकि-से रहे हैं दूत,
दूनी सब पापन के उठी तन ताप ह्वै।
बाँचि बही वा की गति देखि कै विचित्र रहे,
चित्र के लिखे-से चित्रगुप्त चुपचाप ह्वै ॥

गंगा के चरित्र लखि भाष्यौ जमराज यह,
ए रे चित्रगुप्त मेरे हुकुम में कान दै।
कहै 'पदमाकर' नरक सब मूँदि करि,
मूँदि दरवाजन को तजि यह थाम दै।
देखु यह देवनदी कीन्हें सब देव, या तें,
दूतन बुलाइ कै बिदा के बेगि पान दै।
फारि डारु फरद न राखु रोजनामा कहूँ,
खाता खति जान दै वही को बहि जान दै ॥

जैसे तैं न मो सों कहूँ नेक हू डरात हुतो,
ऐसें अब तो सों हौं हूँ नेक हू न डरिहौं।
कहै 'पदमाकर' प्रचंड जौ परैगो तौ,
उमंडि करि तो सों भुजदंड ठोंकि लरिहौं।
चलो-चलु चलो-चलु बिचलु न बीच ही तें,
कीच-बीच नीच तो कुटुंब कौ कचरिहौं।

ए रे दगादार मेरे पातक अपार तोहि,
गंगा के कछार में पछारि छार करिहौं।

जनम-जनम जिन छोड्यो तो न मेरो संग,
अंग-अंग नित ही रहे जों लपटाने हैं।
कहै 'पद्माकर' तिहारी सौंह गंगा जोग-
जप के जतन तें न नेकौ अकुलाने हैं॥
तौन पाप मेरे तेरे तीर पर मैया अब,
मिलत न हेरे इत कित धौं हिराने हैं।
कचरे करार में बहे धौं बीच धार में, कि
बूड़े वै सेवार में कि बारू में बिलाने हैं।
आयो लेन तेरी धौरी धारा में धसत पात,
तिनको न होत सुरपुर तें निपात है।
कहै 'पदमाकर' तिहारो नाम जाके मुख,
ता के मुख अमृत को पुंज सरसात है॥
तेरो तोय छ्वै करि छुवति तन जाको बात,
तिन की चलै न जमलोक माहिं बात है।
जहाँ-जहाँ मैया तेरी धूरि उड़ि जात गंगा,
तहाँ-तहाँ पापन की धूरि उड़ि जात है।
जमपुर द्वारे के किंवारे लगे तारे कोऊ,
हैं न रखवारे ऐसे बनिकै उजारे हैं।
कहै 'पदमाकर' तिहारे प्रनधारे जेते,
करि अघ भारे सुरलोक को सिधारे हैं।
सुजन सुखारे करे पुन्य उजियारे अति,
पतित-कतारे भवसिंधु ते उतारे हैं।
काहू ने न तारे तिन्हें गंगा तुम तारे, आजु
जेते तुम तारे तेते नभ में न तारे हैं।

———

शब्दार्थ

४ पृष्ठ—ठौर=जगह, आश्रय, सिष=शिष्य, जोयकै=जलाकर, बेलरी=बेल, बनराय=बड़े वृक्ष, समुँद=समुद्र, मसि=स्याही, विकार=बुराई, सम्हार=सुधि, जनि=मत, बीसरो=भुलाओ, तोर=तेरा, धुर=मंजिल तक, उद्देश्य तक, पार, मग=रास्ता। ५ पृष्ठ— भुँइ=पृथ्वी पर, बगूला=वातचक्र, बवंडर, मनका=माला का दाना, लहँड़े=झुण्ड। ६ पृष्ठ—हेत=प्रेम, धका=धक्का, नाड़ी=नारी, स्त्री। ७ पृष्ठ—स्वानरूप=कुत्ते जैसा, भूसन दे=भौंकने दे, आब=चमक, तेज, चेरी=दासी, वाजि=घोड़ा, घालि=डालकर, रखकर, स्राप=शाप, बद-दुआ, मते=इच्छा के अनुसार। ८ पृष्ठ—जम=यमराज, अलख=अदृश्य, निराकार, बृच्छा=वृक्ष, पेड़, आतम=आत्मा, अंकूरा=अंकुर, पसारा=फैलाव, वैभव, दरसन=दर्शनशास्त्र, न्याय, वैशेषिक, मीमांसा, सांख्य, योग, वेदान्त, नेवर=पायजेब (एक गहना)। ६ पृष्ठ —कतरनी=कैंची, नेव=नींव, बहि बहि=परिश्रम कर कर, गजी=खद्दर, मोटा कपड़ा, तुरुक=मुसलमान, सेती=से, अन=अनाज, हटकै=मना करना, पारन=व्रत की पारणा, जो व्रत के बाद भोजन किया जाता है, सगोती=गोत्र सहित, परिवार के आदमियों के साथ, भिस्त=बहिश्त, स्वर्ग, खोदाई=खुदा, कनक=सोना। १० पृष्ठ—बिगत बिगत=भिन्न भिन्न, खसिया=बकरा, कुतब=पुस्तक, तंबूरे का=यहाँ शरीर से तात्पर्य है, बीनी=बुनी, भरनी=बाना, सियत=सीते हुए (बनाते हुए), वाको=उसको, कलारी=शराब बेचने वाली। ११ पृष्ठ—ओलै=ओट, आड़ में, भोरा=भोला, सीधासादा, निहोरा=ऐहसान, ऊसर=बंजर भूमि। १३ पृष्ठ—बीचारु=विचार, परखि=परीक्षा कर, ऊजला=उज्ज्वल, बसीठ=दूत, यहाँ पैगम्बर से अभिप्राय है, बोहिता=जहाज, लघावनहारु=प्राप्त कराने वाला। १४ पृष्ठ—सूचा=सच्चा, शुद्ध, रबाब=सारंगी जैसा एक बाजा, दुविधा=संशय, अकारथ=व्यर्थ, निमिष=पल, तिआगो=त्यागो, छोड़ो, अहनिस=रातदिन, तत्त=तत्त्व, असलियत,

पिछाना=पहचाना, निरबाना=निर्वाण, मोक्ष, मुकुर=शीशा, छाईं=छाया, प्रतिबिम्ब। १५ पृष्ठ—आपा=अपने आप को, काई=आवरण, मैल, टेरत=पुकारता है, सेये=सेवन किया, दारा=स्त्री, बिरियाँ=समय, कंचन=सोना, निआरो=न्यारा, मनसा=अभिलाषा। १६ पृष्ठ—पेख पेख=देख देख कर, बिगसाईं=विकसित होता है, प्रसन्न होता है। १७ पृष्ठ—सवँरउँ=स्मरण करता हूँ, परगासू=प्रकाश, कबिलासू=कैलास पर्वत, खेहा=मिट्टी, पृथ्वी, उरेहा=उल्लेख, चित्र, दृश्य, सरग=स्वर्ग, पतारु=पाताल, दिनिअर=दिनकर, नखत=नक्षत्र, तराइन पाँती=तारों की पंक्ति, सीउ=शीत, सर्दी, बीजु=बिजली। १८ पृष्ठ-दोसर=दूसरा, छाज=शोभा, अउगाहि=अवगाहन करके, विस्तार से, नग=पर्वत, निरमरे=निर्मल, स्वच्छ, जरि मूरी=जड़ी मूली, जड़ी बूटी, तरिवर=विशाल वृक्ष, तार=ताड़ (वृक्ष), सामा=श्याम, ओखद=औषध, बाजु=बिना, ठेक=सहारा, हसति=हाथी, चाँटा=चींटी, सतरु=शत्रु, खिआवइ=खिलाता है, उभइ=उभय, दोनों, बेहरा=भिन्न, दिसिटि-वंत=दृष्टि वाला, नीअरे=पास, अंब्रित=अमृत, पखुरिहु=पंखड़ियाँ, छाते=छाए हुए, अनाई=मंगाकर। १९ पृष्ठ—गरेरी=घुमावदार, लोने=सुन्दर, केति=कितने, मंछ=मछलियाँ, बीजु कइ बानी=बिजली के समान, मरजीआ=गोताखोर, हिआऊ=हृदय, उत्साह, बारू=द्वार, दरवाजा, बेवहारू=व्यवहार, राओन=रावण, सँगरामू=संग्राम, युद्ध, बरिबंडा=बलवान, बइसुन्दर=वैश्वानर, अग्नि, सूक=शुक्र, सउँटिया=द्वारपाल, मसिआरा=मशालची, पउनु=पवन, हवा, बोहारा=झाड़ू देना, मीचु=मृत्यु, पाटी बांधी=खाट की पट्टी से बाँध दिया था, काँधी=बराबर का, बजर=वज्र। २३ पृष्ठ—मूक=गूँगा, बाचाल=बहुत बोलने वाला, द्रवउ=प्रसन्न हों, कलिमलदहन=कलियुग का पाप नष्ट करने वाले, बारिजनयन=कमल के समान नेत्र वाले, अरुन=लाल, उमारमन=शिव, करुना अयन=कृपानिधि, मयन=कामदेव, निकर=समूह, महीसुर=ब्राह्मण, कपासू=कपास, निरस=नीरस, रूखा, बिसद=विशद, सफेद, निर्मल, आन=और, राकेस=चन्द्रमा। २४ पृष्ठ—सुमन=

फूल, उपल=ओले, लाहु=लाभ, पवनप्रसंगा=हवा के साथ, कारिख=कालिख, अनल=अग्नि, अनिल=वात, वायु, भेषज=दवाई, जत=जितने, पानि=हाथ, होनिहारा=होने वाला है, सुकृतु=पुण्य, सिरान=नष्ट हो गया, २५ पृष्ठ—नयनागर=नीतिज्ञ, कदराहू=कायर बनो, डरो, नतरु=नहीं तो, अन्यथा, तुहिन=बर्फ, सिअरें=शीतल, तामरसु=लाल कमल, नीकि=अच्छी, पतिआहू=विश्वास करो, परिहरिअ=छोड़ देना चाहिये। २६ पृष्ठ—दव=जंगल की आग, कुदांउ=कुदाव, छल, सेइअहिं=सेवन करना चाहिये, भाग भजनु=भाग्य के पात्र, भाग्यवान्, वादि=व्यर्थ, बिआनी=प्रसूता हुई हुई, सुपासू=सुविधा। २७ पृष्ठ—मूरि=औषधि, घरिनी=स्त्री, कबारु=धन्धा, पखारन=धोने को, बरु=चाहे, लखन तन=लक्ष्मण की तरफ, रजायसु=आज्ञा, दारिददावा=दरिद्रता की आग। २८ पृष्ठ—दसकंठ=रावण, मिताई=मित्रता, बिरंचि=ब्रह्मा, किंवा=अथवा, जगदम्बा=जगत् की माता, सीता, प्रनतपाल=शरणागत की रक्षा करने वाला, कपिपोत=वानर के बच्चे, कुलघालक=कुल का नाश करने वाले। २९ पृष्ठ—बोरा=डुबाया, बिहर=फटा, बूड़ि=डूब, जल्पसि=बकवाद करता है, कूलद्रुम=किनारे के वृक्ष, धावन=दूत, हलकारा। ३० पृष्ठ—वक्र उक्ति=वक्रोक्ति, ताना, व्यंग्य, सँड़सिन्ह=सँडासियों से, माखा=मात्सर्य, डाह, कीस, कीसा=वानर, सिसुन्ह=बच्चों ने, हयसाला=घुड़साल, सहसभुज=सहस्रबाहु, एक राजा, अमित=बहुत, त्रिपुरारी=महादेव। ३१ पृष्ठ—बरिआई=जबरदस्ती, मूलक=मूली, अलीक=झूठ, व्यर्थ, बर्बर=असभ्य दुष्ट, खर्ब=नीच, खर=तेज, धन्वी=धनुधारी, पीयूषा=अमृत, रूखा=वृक्ष, बंगा=उद्दण्ड, उद्धत, उपल=पत्थर, बयर=बैर, चौगाना=खेल का मैदान, सायक=बाण, साखामृग=बन्दर। ३२ पृष्ठ—पयोधि, वारीसा=समुद्र, बसीठीं=दूत के रूप में, विधिगिरा=ब्रह्मा की वाणी, जरठ=बूढ़ा, सैल=पर्वत, इन्द्रजालि=जादूगर, गजारि=सिंह, बरजोरा=बलपूर्वक। ३३ पृष्ठ—चहसी=चाहता है, बदन=मुख, मींजत=मलता हुआ, पवारे=भेजे, फेंके, लूक=उल्का, असनि=वज्रपात। ३४ पृष्ठ—

गर काटि=गला काटकर, सन्यपात=प्रणिपात, एक रोग, मनुजादा=राक्षस, रसना=जीभ, सोनित=रुधिर, समर=युद्ध, लवारा=बातूनी, भूठा, आराती=शत्रु, उरगारी=गरुड़, उपारी सकहिं=उखाड़ सकता है। ३५ पृष्ठ—परचारे=ललकारने पर, जातुधान=राक्षस। ३८ पृष्ठ—रंक=गरीब, बिसरायौ=भुला दिया, नामी=प्रसिद्ध, अनत=अन्यत्र, और जगह, अंबुज=कमल, छेरी=बकरी, पन=प्रतिज्ञा, बधिक=कसाई। ३९ पृष्ठ—बिरद=यश, बड़ाई, पलित केस=सफ़ेद बाल, अनंग=कामदेव, मीन=मछली, मोट अघ=पाप की गठरी, मोहसिवार=मोह की सेवार (घास), ताईं=लिये, अपरिमित=बेहद, सारंग=हिरन। ४० पृष्ठ—नैकु=भले ही, सारँगपानि=विष्णु, अजाचक=धनी, मुहकम=मजबूत।

लीको=रेखा, जक=अड़, जिद्द। ४२ पृष्ठ—गारयो=गलाया। बिलार=बिल्ला, मकरन्द=फूल का रस, शहद। ४३ पृष्ठ—कटिकिङ्किनी=करधनी, प्रवाल=मूंगा, अजिर=आँगन, बिम्ब=परछाँई, ४४ पृष्ठ-अँचरा=अंचल। नँदरैया=नन्दराय, अनत=अन्यत्र। ४५ पृष्ठ-मौंडा=लड़का । अगाऊ=आगे, रिस=क्रोध, चबाई=बातूनी, निन्दक। ४६ पृष्ठ—अलक लड़ैतो=अत्यन्त लाड़ला । ४७ पृष्ठ—मधुपुरी=मथुरा, खरिक=गोशाला, बहुरौ=फिर, बिलगु=बुरा, लव=रट। ४८ पृष्ठ—गाँसी=अनुचित, सैंति=समेट कर। बारक=एक बार। ४९ पृष्ठ—बिहात=बीतते हैं, सिसिरहिमी=सर्दी की बरफ। घोष=ग्वालों की बस्ती, रसाल=रसभरे। ५० पृष्ठ-अवनि=पृथ्वी, कच=बाल। ५४ पृष्ठ—त्रिविधज्वाला=तीन प्रकार का ताप-आध्यात्मिक, आधिदैविक, आधिभौतिक, मघवा—इन्द्र, जासी=जायगा, भगतवछल=भक्तवत्सल। ५५ पृष्ठ—निरख्यो=देखा, मेहड़ा=मेह, वर्षा। ५६ पृष्ठ-थाँरी=तुम्हारी, म्हाँने=हमें। ५७ पृष्ठ—नाराण=नारायण। ५८ पृष्ठ-पन्नग=साँप, पतंग=पक्षी, ज्योतिवन्त=तारे । ५९ पृष्ठ—विश्वरूप=विराटरूप भगवान, कर्षिहै=खींचेगा, श्रौण=श्रवण, कान, शरासन=धनुष, आंगुरह्व द्वै=दो अंगुल भी, अचरज्जु=आश्चर्य ।

६० पृष्ठ—कानीन=कन्या का पुत्र, तुच्छ, अखर्व=बड़ा, सुपर्व=देवता, अङ्गना=स्त्री, आशु=शीघ्र, दंडक=एक दंड में, शीघ्र ही, कालदंड=यमराज की गदा, विषदंड=कमल की नाल। ६१ पृष्ठ—छत्र-प्रभासी=छत्र की शोभा के समान। उसासी=दम लेने की फुरसत, ओक=घर, करतार=ब्रह्मा, विक्रमवाद=पराक्रम का वर्णन, मदन-कदन=महादेव, कोदण्ड=धनुष। ६२ पृष्ठ—वासन=वस्त्र, मद-नासन=घमण्ड को तोड़ने वाला। पराग=पुष्प-रज। ६३ पृष्ठ—पीसजहु=पीस डालो, आसर=असुर। ६४ पृष्ठ—अवनीपति=राजा, बीसबिसे=अधिक से अधिक, शीरष-बासु लै=सिर सूंघ कर, बिजन=पंखा, निमि=निमि वंश का राजा, भवि=भव्य, सुन्दर, अकत्थ=अकथनीय, न कहने योग्य। ६५ पृष्ठ—सलाक=बाण, निदान=कारण। तनै=पुत्र। ६६ पृष्ठ—नराच=बाण। ६८ पृष्ठ—बाधा=विघ्न, झांईं=परछाईं, बानिक=भेस, रूप। ६९ पृष्ठ—डीठ=दृष्टि, गँवई=गंवार, अकस=ईर्ष्या, डाह, मारू=मारवाड़ी, सोधि=खोजकर, मरुधर=मरु-भूमि, मतीरा=तरबूज, वृषादित=वृषराशि में सूर्य, ज्येष्ठमास, मारौ=छोड़ दो, अपतु=पत्र-रहित, राचत=प्रसन्न होता है। ७० पृष्ठ—सोषु=मोक्ष। दमामा=नगाड़ा, पट=वस्त्र, पांखैं=पंख, भखु=भोजन, कांकरे=कंकर, परेई=कबूतरी, परेवा=कबूतर, पानि परि=हाथ पकड़कर, चोल=मंजीठ, बीच=अन्तर, फर्क, गलोति ह्वै=गलपचकर। ७१ पृष्ठ—परेखो=परख, परिपारि=मर्यादा, हद, कनक=सोना, भोडर=अभ्रक, पोत=ढंग, सतरौहैं=क्रोधयुक्त, दुराज=एक ही देश पर दो राजाओं का राज्य, दंद=द्वन्द्व, लड़ाई, मावस=अमावस्या, चखनि=आँखों पर, मूर=मूल, कभी। ७२ पृष्ठ—रुचि=अभिलाषा, सुन्दरता, कनक=धतूरा, सोना, राँचे=प्रसन्न होता है, भजन=सेवा करना, भागना, भज्यो=भागा, सेवन किया, दई=भाग्य, दिया, बरिया=बार, अवसर, करिया=मल्लाह, गुनविस्तारन=गुण का अभिमान दिखाना, डोर फैलाना, निर्गुन=गुणहीन, डोर के बिना, डोर समेटने पर, चंगरंग=पतंग के समान, सत-रोहे=रोषपूर्ण, औथरौ=उथला, बाय=बावड़ी, देखबी=

देखूंगा, **बींधे**=बिंधे, मिले, **गीधे**=लोभी हुए हुए, परचे हुए, **गीधहिं**=जटायु को। ७३ पृष्ठ—**तूठे-तूठे**=संतुष्ट होकर, **आदि सकति**=आदि-शक्ति, दुर्गा, **कपर्दिनि**=पार्वती, **छलनि**=छलने वाली, **चमुंड**=चामुंडा, देवी, **विड्डाल**=विडालाक्ष दैत्य, **भननि**=कहने वाली, **सरजा**=शिवाजी की उपाधि, **नंद**=पुत्र, **विरंचिहू की न तिया**=ब्रह्मा की स्त्री सरस्वती भी नहीं, **साहिबी**=वैभव, **छिया**=छुए हुए, मलीन। ७६ पृष्ठ—**जाहिर**=प्रकट, **पावक**=आग, **अमीतन**=शत्रुओं को, **धाम सुधा को**=अमृत का स्थान, **समुदै**=समुद्र, **मुधा**=असत्यता, निष्फलता, **सौंधे**=सुन्दर, **दुन्दुभि**=नगाड़ा, **कुन्द**=एक सफेद फूल, **पयवृन्द**=क्षीरसागर, **कृसानु**=अग्नि, **द्विज राम**=परशुराम, **अनुरागे**=अनुरक्त होने पर, **मृगराज**=सिंह, **धुव**=ध्रुव, **कामनादानि**=मनोरथ पूर्ण करने वाला, **सुररूख**=कल्पवृक्ष, **देवगऊ**=कामधेनु, **दिग्दन्ति**=दिग्गज, **कुण्डलि**=साँप, **कोल**=वराह, **कच्छू**=कछुआ, **चतुरंग**=हाथी, घोड़े, रथ और पैदलों की सेना चतुरंगिणी कहलाती है। **तुरंग**=घोड़ा, **विहद**=बेहद, **गैबरन**=मस्त हाथी, **रलत**=मिलता है। **पैल**=समूह (सेना), **फैल**=फैलना, **खैलभैल**=खलबली, **खलक**=संसार, **गैल**=मार्ग, **ठेलपेल**=रेल-पेल, धक्कमधक्का, **सैल**=पहाड़, **उसलत**=उखड़ते हैं। ७७ पृष्ठ—**तरनि**=सूर्य, **धूरि**=धूल, **थारा**=थाली, **पारावार**=समुद्र, **उनमादा**=पागल, **सिंहल**=लंका, **हाक**=हाँक, दहाड़, **पाटसादा**=मेरे पूरे राज्य के लोग, **अलका**=कुबेर की नगरी, **निसाचर**=राक्षस, **भूरि**=बहुत, **भूधर**=पर्वत, **जुत्थ**=झुण्ड, **किलकि**=चिल्लाकर, **दिगंबर**=शिव, **कमान**=धनुष, **मुरचा**=मोर्चा, **दावा बाँधि**=हिम्मत बांधकर, **झोट**=झुण्ड, **किम्मत**=कीमत, प्रतिष्ठा, **भट**=योद्धा। ७८ पृष्ठ—**ज्याइतु**=जिलाये जाते हैं, **तुरीगन**=घोड़ों का समूह, **निहाल**=सन्तुष्ट, **गुननि सौं**=गुणों से, रस्सियों से, **पाय गहे**=पैर छूकर, पाकर और पकड़ कर. **ध्याइयतु**=ध्यान करते हो, ले आते हो, **रस**=प्रेम, **रोस**=क्रोध, **दोहाई**=दोहा (छन्द) ही, दुहाई, **ज्याइयतु**=पोषण करते हो, जिलाते हो, **अरि**=शत्रु, **ब्रजराज**=कृष्ण, **पोसतभरतहौ**=भरणपोषण करते हो, **भृगु**=शुक्राचार्य, जिसने भगवान्

के लात जमाई थी। ७६ पृष्ठ—**नाग**=साँप, **इन्द्रनाग**=ऐरावत, **अवस**=व्यर्थ, **बहरात**=उड़ जाता है, **पुडरीक**=श्वेत कमल, **छीरधि**=क्षीरसागर, **पंक**=कीचड़, **कलानिधि**=चाँद, **एक टंक**=तनिक भी, **अंबरीक**=अम्बरीष राजा, **जजाति**=ययाति राजा, **खरीक**=तिनका, **किंजलक**=किंजल्क, कमलफूल का केसर, **उड़वृंद**=तारे, **कंद**=जड़, मूल, **नाकगंग**=आकाशगंगा, **चंचरीक**=भौंरा, **नाल**=कमल की डंडी, **देह**=दानकर, शरीर, **जौन तौन**=जो तो, इधर उधर की बातें, उज्र, **गौन**=गमन, **नग**=जवाहरात, **नगन**=नंगा।

८२ पृष्ठ—**गुनपुरे**=गुणपूर्ण, **जरूरे**=जरूरतमन्द, **पन्नगफटान**=सांप के फन, **मनिमानिक**=जवाहरात, **मन मानि**=मन में ही मान लो, **धराई**=पृथ्वी में ही, **धराइबौ**=धरे रहेंगे, **भूख**=इच्छा, **जूरे**=जूड़ा, **कबन्ध**=एक सिर कटा राक्षस, जिसे राम ने मारा था, **मदंध**=मदान्ध, अभिमान से अन्धा, **दाया**=दया, **मंथर**=दुष्ट, मन्द, **विराध**=एक राक्षस, **असाधु**=दुष्ट, **गुनाही**=गुनाहगार, अपराधी, **स्यौरी**=शबरी, **सुद्र**=शूद्र, **गौतमी तिया**=अहल्या।

८३ पृष्ठ—**अगाध**=बहुत, **वैन**=वचन, **प्रलै**=प्रलय, **लौं**=समान, **अमित**=बहुत, पूरा, **जाटहू धना**=धन्ना जाट, **सदना**=एक कसाई का नाम।

८४ पृष्ठ—**दिगम्बर**=नंगे, **बघंबर**=बाघ की खाल रूप कपड़ा, **सीकर**=बूँद, **पंचपावक**=पंचाग्नि, **जाम**=पहर, **सापनो**=सुपना, **पेखनो**=प्रेक्षण, तमाशा, **जकि-सी**=हैरान सी, **व्यालन**=सर्प, दुष्ट, **आतस**=आग, **चायन**=चाव से, प्रेम से, **सूधे सुभावन**=सीधे स्वभाव वाला, **गयंद**=हाथी, **उबाहने पायन**=नंगे पाँव।

८५ पृष्ठ—**रजतपहार**=कैलास, **थाप**=स्थिति, **फरद**=लेखा, **खाता**=बहीखाता, **हुतो**=था, **हौ हूँ**=मैं भी, **लरिहौं**=लड़ूँगा, **कचरिहौं**=कुचल दूँगा।

८६ पृष्ठ—**कछार**=तराई, नदी के किनारे की नीची भूमि, **छोड्यो तो**=छोड़ा था, **हिराने**=खो गये, **कचरे**=दब गये, **कगार**=तट की ऊँची भूमि, **बारू**=बालू, रेत, **धौरी**=सफेद, **पात**=डुबकी, **अघ भारे**=भारी पाप, **पतित-कतारे**=पतितों की कतारें।

—:०:—

हमारी अपनी प्रकाशित सर्वोत्तम हिन्दी पुस्तकें

१ गल्पमंजरी—हिन्दी के सर्वोत्तम गल्पलेखकों की गल्पों का संग्रह। संग्रहकर्ता—भारत विख्यात श्रीसुदर्शन, पक्की जिलद द्वितीयावृत्ति २॥)
२ बृहद्भारतीय चित्रकारी में रामायण—सचित्र-लेखक—डा. के. एन सीताराम एम. ए. २॥)
३ सुदर्शन सुमन—गल्पलेखक श्रीसुदर्शन की सर्वोत्तम कहानियां हैं २)
४ श्रीहर्ष—लेखक—श्रीराधाकुमुद मुकर्जी एम. ए. १॥)
५ सूरसूक्तिसुधा—संग्रहकर्ता—भारतविख्यात श्रीवियोगीहरि द्वितीयावृत्ति १।)
६ दाहर (अथवा सिन्धपतन)—नाटककार श्री उदयशंकर भट्ट ४र्थावृत्ति १)
७ राका—हिन्दी के यशस्वी कवि श्रीउदयशंकर भट्ट की कविताओं का संग्रह १)
८ महाराणा प्रताप—लेखक श्रीराम शर्मा एम. ए. द्वितीयावृत्ति १)
९ अम्बा (वियोगान्त एवं मौलिक नाटक)—लेखक श्रीउदयशंकर भट्ट ॥=)
१० गल्पमाला—संग्रहकर्त्ता—डा० बनारसीदास जैन द्वितीयावृत्ति २)
११ गल्परत्नावली— „ आचार्य श्रीचतुरसेन जी १॥=)
१२ कलरव—सम्पादक—श्रीहरिकृष्ण प्रेमी २)
१३ अजीतसिंह—ऐतिहासिक नाटक लेखक श्रीचतुरसेन शास्त्री १।)
१४ व्रजविनोद—कवि भवानीदास विरचित ॥)
१५ सगर विजय—नाटक ले० श्रीउदयशंकर भट्ट १)
१६ वध्यशिला—नाटक ले० श्रीजगदीश शास्त्री एम. ए., एम. ओ. एल ॥)
१७ मत्स्यगन्धा—भावनाट्य—ले० श्रीउदयशंकर भट्ट १)
१८ जयपराजय—नाटक ले० श्री उपेन्द्रनाथ अश्क १॥)
१९ भाग्य चक्र—नाटक ले० श्री सुदर्शन जी १।)
२० कालिदास—लेखक वा० वि० मिराशी एम. ए. ३।)

संसार भर की हिन्दी संस्कृत पुस्तकें नीचे लिखे पते से मंगवाएं।

मोतीलाल बनारसीदास
प्रकाशक तथा पुस्तक-विक्रेता,
बांकीपुर, पटना।

मोतीलाल बनारसीदास,
संस्कृत-हिन्दी-पुस्तक-विक्रेता,
सैदमिट्ठा बाजार, लाहौर।


K. P. SAB
No
D

यदि आपको
संस्कृत की
प्राज्ञ, विशारद, शास्त्री
एवं
हिन्दी की रत्न, भूषण तथा
प्रभाकर की परीक्षा-पुस्तकों
की आवश्यकता हो तो
नीचे लिखे पते पर
आर्डर भेज कर
कृतार्थ करें।
इन परीक्षाओं के सूचीपत्र बिना
मूल्य भेजे जाते हैं। पताः—
मोतीलाल बनारसीदास
अध्यक्ष-पंजाब संस्कृत पुस्तकालय,
सैदमिट्ठा बाज़ार, लाहौर।